काशी की सारस्वत साधना

महामहोपाध्याय पद्मविभूषण डॉ. श्रीगोपीनाथ कविराज

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

काशी की सारस्वत साधना

महामहोपाध्याय पद्मविभूषण डॉ० श्रीगोपीनाथ कविराज

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना - ४

© बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

प्रकाशक : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग
सैदपुर, पटना - ८०० ००४

संस्करण : द्वितीय संस्करण - ११००
शकाब्द १९२०, विक्रमाब्द २०५५, सन् १९९८ ई०

मूल्य : 35.00 रुपये

मुद्रक : इन्द्रप्रस्थ इन्टरनेशनल
द्वारा तरुण प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

महामहोपाध्याय पद्मविभूषण डॉ. श्रीगोपीनाथ कविराज
एम्. ए., डी. लिट्.
भूतपूर्व प्राचार्य, गवर्नमेण्ट संस्कृत-कॉलेज, वाराणसी

भूमिका

संस्कृत-साहित्य के इतिहास की आलोचना करते-करते एक समय मन में यह विचार उठा था कि इस गौरवमय इतिहास के निर्माण में भारत के किस-किस प्रदेश की कितनी देन है, यह जानना चाहिए। संस्कृत-भाषा प्राचीन समय से ही भारतवर्षीय हिन्दुओं की निज भाषा रही है। प्रत्येक प्रदेश में प्रादेशिक भाषा तथा साहित्य विद्यमान रहने पर भी संस्कृत-भाषा के साथ सभी प्रदेशों का समान श्रद्धापूर्ण सम्बन्ध दिखाई देता है। इसीलिए, जान पड़ता है कि इस भाषा के विकास तथा श्रीवृद्धि के सम्पादन में प्रायः प्रत्येक प्रदेश ने अपना-अपना भाग लिया। स्थान-विशेष तथा समय-विशेष में किसी विशिष्ट प्रस्थान की समधिक चर्चा हुई थी, यह ऐतिहासिक सत्य है। जैसे ८वीं शती से १०वीं शती तक कश्मीर में शैवधर्म का विकास हुआ था, जैसे १५वीं शती से १७वीं शती तक मिथिला और नवद्वीप में नव्यन्याय की चर्चा विशेष रूप से हुई थी इत्यादि। इस प्रकार का सामयिक उच्छ्वास प्रादेशिक भाषाओं में भी विभिन्न स्थानों में लक्षित होता है। परन्तु, स्थूल दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि प्रायः प्रत्येक युग में और प्रत्येक प्रदेश में संस्कृत-साहित्य का रचनात्मक कार्य न्यूनाधिक मात्रा में होता आया है।

प्रायः ५० वर्ष पूर्व, जिस समय हम गवर्नमेण्ट संस्कृत-कॉलेज, काशी में सेवक-रूप में प्रविष्ट हुए और वहाँ सरस्वती-भवन का ग्रन्थरत्नागार खोलकर अनुसन्धान करने लगे एवं प्रसङ्गतः न्याय-वैशेषिक साहित्य का इतिहास संकलन करने लगे, उस समय हमें विभिन्न विषयों के ग्रन्थों का निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस अनुसन्धान-कार्य में हमें सरस्वती-भवन स्टडीज के निमित्त प्रवृत्त होना पड़ा था। उस समय यह बात ध्यान में आई थी कि मध्ययुगीन संस्कृत-साहित्य के विकास में काशी का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में भी ऐसा ही स्थान होगा, परन्तु वह हमारी आलोचना का विषय नहीं था। उस समय हम न केवल सरस्वती-भवन का पुस्तक-भण्डार देखते थे, बल्कि काशी नगर-स्थित विशिष्ट विद्वानों के व्यक्तिगत प्राचीन पुस्तक-संग्रह भी विशेष रूप से देखकर समालोचन करते थे। इस सिलसिले में श्रीबाबूदीक्षित जड़े, महादेव शास्त्री पुणताम्बेकर प्रभृति के पुस्तक-संग्रह हमने देखे थे। शुक्लयजुर्वेद के टीकाकार प्रसिद्ध वैदिक तथा तान्त्रिक महीधरजी का पुस्तक-संग्रह भी इसी समय देखने में आया था। यह संग्रह कालान्तर में सरस्वती-भवन ग्रन्थागार के लिए ले लिया गया था। हमारी आलोचना किसी प्रस्थान-विशेष में निबद्ध नहीं थी, यथासंभव विभिन्न विषयों को लेकर चलती थी। साथ-ही-साथ हम गुरुत्व-

पूर्ण विषयों का, अनुलिपि अथवा सार-संकलन द्वारा, संग्रह कर लेते थे। संस्कृत-वाङ्मय के प्रायः सभी विषय हमारे आलोचना-क्षेत्र के अन्तर्गत थे। दीर्घकाल-पर्यन्त इस प्रकार का संकलन-कार्य चलता रहा। इससे पता चला कि प्रायः चार सौ वर्षों की सामग्री हमारे निकट संगृहीत हो गई है। उस समय हमने उक्त सामग्री को पहले काल-विभाग से विभक्त कर वर्गीकृत करने की चेष्टा की। कभी इसका प्रकाशन होगा, इस प्रकार का संकल्प चित्त में नहीं था। यह कार्य केवल अपने मनोविनोद के लिए ही किया गया था। केवल यही नहीं, इसके अतिरिक्त बहुत-से विषयों में हम तथ्य-संग्रह करते रहते थे।

इन सब विषयों में से जिसमें हमारा विशेष आग्रह रहा, वह था काशी का एक सर्वाङ्गीण सांस्कृतिक विवरणात्मक ग्रन्थ संकलित करना, जिसमें यथासंभव तथ्यों का संग्रह किया जा सके। उसमें बाह्य लौकिक इतिहास की दिक् तो रहे ही, उसके अन्तराल में रहे आध्यात्मिक भावदृष्टि से काशी का स्वरूप-निर्णय तथा विशेषतः मध्ययुगीन हिन्दू-समाज में काशी की प्रतिष्ठा भी। काशी परा तथा अपरा उभयविध विद्याओं की पीठस्थली दीर्घकाल तक रही। प्राचीन बौद्धसाहित्य (पालि और संस्कृत), जैनसाहित्य (प्राकृत और संस्कृत), पुराण-इतिहास, शिलालेखादि उपकरण तथा विभिन्न काव्यग्रन्थादि से और वैदेशिक पर्यटकों के लेखादि विवरणों से प्राप्त सामग्री—इन्हीं सबके आधार पर यह कार्य किया जाय। परन्तु, इसमें किञ्चिदंश ही कार्यरूप में परिणत किया जा सका, शेष अंश कल्पना में ही रह गया।

बहुत दिनों के बाद, आज से कई वर्ष पूर्व, एक दिन प्रसङ्गतः यह बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के निदेशक हमारे परम स्नेहभाजन डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' जी के दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने इसे देखकर इसमें विशेष दिलचस्पी दिखाई और आग्रह किया कि ये सब प्राचीन संग्रहात्मक कागज-पत्र जैसे उपेक्षित होकर नष्ट न हो जायँ, उसके लिए प्रबन्ध करना चाहिए। उन्होंने प्रस्ताव किया कि यदि आप आज्ञा दें, तो यह बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की ओर से प्रकाशित कर दिया जाय। उसके प्रबन्ध के लिए उन्होंने पं० श्रीकृष्ण पन्तजी से अनुरोध किया कि इसका यथाकर्त्तव्य सम्पन्न कर दें। तदनुसार, पन्तजी ने यह जीर्णोद्धार कार्य कर कर्त्तव्य-सम्पादन किया। यथासमय यह उक्त परिषद् की पत्रिका के विभिन्न अङ्कों में प्रकाशित हो चुका है। इस प्रसङ्ग में यह कहना अनुचित न होगा कि लेखों के इस संग्रह का यह नाम भी निदेशकजी की ही कल्पना से प्रसूत है। यह संग्रह पत्रिका में तो प्रकाशित हो चुका था, अब यह ग्रन्थाकार प्रकाशित है।

यह ग्रन्थ, एक दृष्टि से यदि कहा जाय तो, अपूर्ण है; क्योंकि इसमें १८वीं शती का भी सम्पूर्ण वृत्तान्त नहीं है, १९वीं और २०वीं शती का तो कुछ भी नहीं है। वस्तुतः, १८वीं से २०वीं शती तक की काशी की सारस्वत साधना का इतिहास स्वतन्त्र रूप से संकलित किया जाना चाहिए। आशा है, भविष्य में कोई

उत्साही अनुसन्धित्सु इस कार्य में प्रवृत्त होंगे। वे मेरे इस आलोचना के लिए गृहीत समय से प्राचीन समय की भी आलोचना करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि जिन शताब्दियों का आलोचन इस ग्रन्थ में किया गया है, उनमें भी किसी ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकार का विवरण छूट गया होगा। जहाँ छूटा न भी हो, वहाँ अभिनव गवेषणा के फलस्वरूप यदि कुछ परिवर्त्तन अपेक्षित हो, तो उसमें भी परिवर्त्तन कर देंगे।

इस विषय में ग्रन्थ लिखने का संकल्प करके यह ग्रन्थ लिखा नहीं गया, इसलिए इसमें कुछ नामों का छूट जाना स्वाभाविक है। उस समय जो कुछ वृत्त मिला था, वही संगृहीत किया गया था। भविष्य के इतिहास-लेखक के गवेषणा-कार्य में यह छोटा-सा ग्रन्थ किसी-किसी विषय में दिग्दर्शन का कार्य करेगा और किसी-किसी विषय में सहायता भी करेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

२/ए सिगरा, वाराणसी
विजया १०, २०२१ वि०

गोपीनाथ कविराज

वक्तव्य

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज लिखित 'काशी की सारस्वत साधना' नामक पुस्तक का यह दूसरा संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

प्राचीन काल से ही काशी न सिर्फ भारतवर्ष की आध्यात्मिक केंद्रस्थली रही है, बल्कि भारतीय वांग्मय के सृजनपीठ के रूप में भी समादृत रही है। भारतीय मनीषा को काशी का अवदान चिरस्मरणीय है।

भारतीय संस्कृति अपनी समग्रता में जिन उपादानों से विनिर्मित हुई है, उन उपादानों का अधिकांश काशी का अवदान है। साहित्य का सृजन ही नहीं, तत्व चिंतन के विविध आयाम काशी की सारस्वत साधना में प्रत्यभिज्ञेय हैं। वेद, धर्मशास्त्र, व्याकरण, न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत, पुराण, इतिहास, वैष्णव मत, ज्योतिष, अलंकार, काव्य, छंद, कोश और विभिन्न ग्रंथों की टीकाएं विपुल राशि में यहाँ विरचित हुईं। भारतवर्ष के किसी एक नगर में ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का ऐसा विपुल कोश नहीं रचा गया।

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज ने प्रस्तुत ग्रंथ में १३वीं० शताब्दी से १८वीं० शताब्दी तक के काल-खंड को अपना विषय-क्षेत्र बनाया है। इस ग्रंथ की दूसरी सीमा भाषागत है। मात्र संस्कृत भाषा में लिखित ग्रंथ ही अध्ययन की सीमा में आये हैं। प्राकृत अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य प्रस्तुत ग्रंथ की अध्ययन-सीमा से बाहर हैं। लेखक की यह विनम्र आत्मस्वीकृति भी उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत ग्रंथ अपूर्ण है और एतद्विषयक विशद अध्ययन की उत्प्रेरक भूमिका-मात्र है।

काशी के छह सौ वर्षों (१३वीं से १८वीं शताब्दी) का सारस्वत इतिहास तो आंशिक उपस्थापन मात्र है। इस काल-खंड के पूर्व और पश्चात् की विस्मृत-अविस्मृत कितनी सारी 'ज्ञान-राशि' पुस्तक में समाहित नहीं हो पायी है।

बावजूद इसके, संक्षिप्त होते हुए भी 'काशी की सारस्वत साधना' अनुपम ग्रंथ है। म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज भारतीय सारस्वत साधना के मूर्तिमान रूप थे। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् पर उनकी विशेष कृपा थी। उनकी कृपा का ही परिणाम था कि उनके अनेक ग्रंथों के प्रकाशन का श्रेय परिषद् को प्राप्त हुआ। प्रस्तुत ग्रंथ का प्रथम संस्करण सन् १९६५ ई० में प्रकाशित हुआ था। लंबे अंतराल के बाद इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है, पाठक इस संस्करण का स्वागत करेंगे।

रामधारी सिंह दिवाकर
निदेशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्,
पटना - ८०० ००४

२५ सितम्बर, १९९८

सूची

प्रस्तावना	...	१–२
१३वीं शताब्दी		२ से ५
कविकान्तसरस्वती	...	३
कुल्लूकभट्ट	...	३
महाराष्ट्रसन्त ज्ञानेश्वर	...	४
सरस्वतीतीर्थ (नरहरि)	...	४
१४वीं शताब्दी		५ से ७
रामचन्द्र आचार्य	...	५
श्रीधर स्वामी	...	६
जिनप्रभसूरि	...	७
स्वामी ज्ञानानन्द	...	७
स्वामी प्रकाशानन्द	...	७
स्वामी अखण्डानन्द	...	७
१५वीं शताब्दी		७ से १३
नृसिंहाचार्य	...	७
विट्ठलाचार्य	...	८
लक्ष्मीधर	...	८
अनन्ताचार्य	...	८
मकरन्द	...	८
रुक्मभट्ट	...	९
शङ्करमिश्र	...	९
अभिनव वाचस्पतिमिश्र	...	१०
नरहरि विशारद भट्टाचार्य	...	१०
वासुदेव सार्वभौम	...	१०
हरिव्यासदेव	...	११
प्रगल्भाचार्य (शुभंकर)	...	१२
१६वीं शताब्दी		१४ से ४२
शेषकृष्ण	...	१४
शेषनारायण	...	१५
शेषचिन्तामणि	...	१५

नारायणभट्ट	...	१६
श्रीधरभट्ट	...	१७
माधव	...	१७
रघुनाथ 'सम्राट्स्थपति'	...	१८
प्रभाकर	...	१८
रामकृष्णभट्ट	...	१८
शङ्करभट्ट (प्रथम)	...	१८
रघुपति उपाध्याय (१)	...	१९
नन्दपण्डित	...	१९
विज्ञानभिक्षु	...	२१
प्रसादमाधव योगी	...	२३
भावागणेश	...	२३
दिव्यसिंह मिश्र	...	२३
महीधर या महीदास	...	२३
नरहरि विशारद	...	२६
विद्यानिवास	...	२६
विश्वनाथ सिद्धान्तपञ्चानन	...	२६
रुद्र न्यायवाचस्पति	...	२७
गोविन्द भट्टाचार्य	...	२८
भवानन्द सिद्धान्तवागीश	...	२८
देवीदास विद्याभूषण	...	२८
चिरंजीव भट्टाचार्य	...	२८
रामकृष्ण चक्रवर्त्ती	...	२९
महेश ठक्कुर	...	३०
रघुपति उपाध्याय (२)	...	३०
रामकृष्ण	...	३०
एकनाथ	...	३०
नृसिंहाश्रम	...	३१
नारायणाश्रम	...	३४
प्रकाशानन्द (प्रबोधानन्द)	...	३४
अप्पय्यदीक्षित	...	३४
मधुसूदनसरस्वती	...	३७
पुरुषोत्तमसरस्वती	...	३९
रामतीर्थ	...	३९
नृसिंहसरस्वती	...	३९
नीलकण्ठदैवज्ञ	...	४०

रामदैवज्ञ ... ४०
केशवभट्ट ... ४०
बलभद्रमिश्र ... ४०
गौरीकान्त सार्वभौम ... ४२
१७वीं शताब्दी ... **४२ से ६९**
दिनकर या दिवाकरभट्ट ... ४२
विश्वेश्वरभट्ट या गागाभट्ट ... ४३
कमलाकरभट्ट ... ४३
लक्ष्मणभट्ट ... ४४
अनन्तभट्ट ... ४४
दामोदरभट्ट ... ४४
सिद्धेश्वरभट्ट ... ४५
नीलकण्ठभट्ट ... ४५
शङ्करभट्ट (द्वितीय) ... ४५
भानुभट्ट ... ४६
महादेवभट्ट ... ४६
दिवाकरभट्ट ... ४६
दिनकरभट्ट ... ४६
वैद्यनाथभट्ट ... ४७
खण्डदेव ... ४७
शम्भुभट्ट (शंकरानन्द-संन्यासाश्रम में) ... ४७, ७१
रंगोजिभट्ट ... ४८
भट्टोजिदीक्षित ... ४८
भानुजिदीक्षित, वीरेश्वरदीक्षित या रामाश्रम ... ४९
कौण्डभट्ट ... ४९
वीरतारामणि राव ... ५०
नीलकण्ठ शुक्ल ... ५०
हरिदीक्षित ... ५०
शेषचक्रपाणि ... ५०
शेषरामचन्द्र ... ५०
पण्डितराज जगन्नाथ ... ५०
रामचन्द्र तत्सत्-वंशीय ... ५२
लक्ष्मणभट्ट ... ५३
नीलकण्ठचतुर्धर ... ५३
शिवचतुर्धर ... ५५
रंगनाथभट्ट (प्रथम) ... ५५

गौरीपतिभट्ट	...	५५
भास्कर अग्निहोत्री या हरि	...	५६
आपदेव (द्वितीय)	...	५६
अनन्तदेव (द्वितीय)	...	५६
रघुनाथ गणेश नवहस्त	...	५७
जीवदेव	...	५७
अनन्त पन्त	...	५८
मुकुन्द पन्त	...	५८
महादेव पन्त	...	५८
माधवदेव	...	५९
वरदराज दीक्षित	...	५९
रामचन्द्र शर्मा	...	५९
गोविन्ददैवज्ञ	...	६०
विष्णुदैवज्ञ	...	६०
श्रीकृष्णदैवज्ञ	...	६०
रङ्गनाथदैवज्ञ	...	६१
मुनीश्वर या विश्वरूप	...	६१
नृसिंहभट्ट	...	६१
विश्वनाथ	...	६२
शिवभट्ट	...	६२
दिवाकरभट्ट	...	६२
कमलाकरभट्ट	...	६२
रघुनाथ जोशी	...	६२
नारायणतीर्थ या नारायणभिक्षु	...	६२
ब्रह्मानन्दसरस्वती	...	६३
स्वयंप्रकाशानन्द	...	६३
वेदान्ती महादेव	...	६४
अच्युतकृष्णतीर्थ	...	६४
रामानन्द सरस्वती	...	६४
त्रिलोचनदेव न्यायपञ्चानन	...	६५
म० म० रामचन्द्र सिद्धान्तवागीश	...	६५
महादेव भट्टाचार्य	...	६५
रघुदेव न्यायालङ्कार	...	६५
रामराम भट्टाचार्य	...	६६
राघवेन्द्र भट्टाचार्य शतावधान	...	६६
चिरंजीव भट्टाचार्य	...	६६

जयराम न्यायपञ्चानन	...	६७
श्रीनिवासभट्ट (विद्यानन्द)	...	६८
शिवानन्द गोस्वामी	...	६८
जनार्दन गोस्वामी	...	६८
लौगाक्षिभास्कर	...	६८
कवीन्द्राचार्य सरस्वती	...	६९
१८वीं शताब्दी		७० से ७९
वेणीदत्त (तर्कवागीश भट्टाचार्य)	...	७०
प्रेमनिधि पन्त	...	७०
गङ्गारामजड़	...	७१
सदानन्दव्यास	...	७२
विश्वेश्वरपाण्डेय	...	७३
नागोजिभट्ट (नागेशभट्ट काले)	...	७४
वैद्यनाथ पायगुण्डे	...	७५
बालम्भट्ट पायगुण्डे	...	७५
मनुदेव या गोपाल	...	७५
रत्नाकरभट्ट	...	७६
भास्करराय	...	७६
उमानन्दनाथ (जगन्नाथ)	...	७७
रामेश्वर	...	७८
उपसंहार	...	७८-७९

काशी की सारस्वत साधना

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के इतिहास में भारत के विभिन्न प्रदेशों ने प्राचीन तथा मध्ययुग में अपने-अपने ऐश्वर्य और वैशिष्ट्य का प्रदर्शन किया था। साहित्य, कला, धर्मशास्त्र, अध्यात्म-विज्ञान आदि सभी विषयों के उन्नयन में विभिन्न प्रदेशों का कोई कम सहयोग नहीं रहा।

संस्कृति के बहुत-से अंग हैं। उनमें से किसी अंग की पुष्टि समग्र संस्कृति की पुष्टि में परिगणित होती है। भारतवर्ष में जैसा संस्कृति का वैचित्र्य देखा जाता है, भाषा का वैचित्र्य भी उससे कम नहीं है। यह भाषा तो भारतीय होने पर भी प्रादेशिक मात्र ही है, इसीलिए इसका साहित्य विषय के प्रभाव से व्यापक तथा सर्वजनचित्ताकर्षक होने पर भी वास्तव में प्रादेशिक साहित्य ही है। यह समग्र भारत का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता; क्योंकि संस्कृत-भाषा से जो भाषा जितनी ही विच्छिन्न होगी, वह भारतीय संस्कृति के केन्द्र से उतनी ही हटती जायगी। प्रादेशिक भाषा का आदर सर्वत्र नहीं होता; क्योंकि एक स्थान की भाषा दूसरे स्थान में व्यवहार-योग्य नहीं होती। इसीलिए, एकमात्र संस्कृत-वाङ्मय ही भारतीय संस्कृति के वाहन के रूप में अपने को उद्घोषित कर सकता है। प्रत्येक प्रदेश ने प्राचीन समय से ही इस वाङ्मय की उन्नति के लिए न्यूनाधिक चेष्टा की है। व्यापक दृष्टि से देखने पर कहा जा सकता है कि अति प्राचीन काल से वर्तमान काल तक सभी प्रदेश देशगत भेद रहते हुए भी संस्कृत-भाषा की उन्नति के लिए उद्यम करते आ रहे हैं।

वर्तमान निबन्ध में संस्कृत-साहित्य के क्रम-विकास में काशी का कितना अधिक हाथ रहा, संक्षेप में ही यह प्रस्तुत किया जायगा। परन्तु, इस आलोचना को हम एक निर्दिष्ट काल की सीमा में ही सीमित रखने की चेष्टा करेंगे। अति प्राचीन काल से ऐतिहासिक तथ्य के निरूपण की चेष्टा करना इसका उद्देश्य नहीं है। इसमें १३वीं शती से १८वीं शती तक (६०० वर्षों) के संक्षिप्त विवरणों के आधार पर इतिहास-संकलन की चेष्टा की जायगी।

१३वीं तथा १४वीं शती का ग्रन्थनिर्माणरूप अवदान बहुत कम है। विशेषतः उसका बहुत कम अंश हम लोगों के ज्ञानगोचर हुआ है। परन्तु, व्यापक अनुसन्धान के प्रभाव से यह न्यूनता भी धीरे-धीरे दूर होती जायगी। १५वीं शती से अपेक्षाकृत विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इस संकलन-कार्य में निरत होने पर हमें जो अनुभव हुआ है, उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वर्तमान युग में प्रचलित संस्कृत-साहित्य का एक विशिष्ट अंश काशी में ही संकलित हुआ था। केवल

किसी एक ही विषय में नहीं, प्रायः सभी विषयों में यह वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है। साहित्य, ज्यौतिष, धर्मशास्त्र, व्याकरण, तन्त्र, वैष्णव तथा तान्त्रिक आगम, मीमांसा, वेदान्त, न्याय-वैशेषिक प्रभृति भारतीय संस्कृति के सभी विभाग काशी की देन से परिपुष्ट हुए हैं। यद्यपि काशी भारत के एक निर्दिष्ट प्रदेश का नगरविशेष है, तथापि इसका गौरव और माहात्म्य अन्यान्य अनेक स्थानों से कहीं अधिक है। अति प्राचीन समय की बात तो दूर रही, इसमें काशी के प्रारम्भिक मध्ययुग का वृत्तान्त भी नहीं दिया जा सकेगा। परन्तु, हम जिस समय की बात कहना चाहते हैं, उस समय काशीधाम केवल अध्यात्म-क्षेत्र में ही नहीं, विद्यापीठ के रूप में भी विशिष्ट आसन पर समासीन रहा। यवनकाल में हिन्दू-समाज की संस्कृति का भार प्रधान रूप से काशी पर ही निर्भर रहा। यद्यपि भारत के विभिन्न प्रान्तों में विद्या-केन्द्र वर्तमान थे और उनका प्रभाव भी कुछ कम नहीं था, तथापि ऐसा विशिष्ट केन्द्र शायद ही कोई होगा, जिसकी काशी के साथ तुलना की जा सके। मध्ययुग में यवनों के उपद्रव भारत के बहुत-से स्थानों में होते रहते थे। उनसे तंग आकर भी भारत के नाना प्रदेशों से पण्डित-वर्ग काशी की ओर आकृष्ट होता था। व्यक्तिगत दृष्टि से देखा जाय, तो यह भी सत्य है कि बहुत-से विद्वान् जीवन का अन्तिम भाग काशी में व्यतीत करने के लिए यहाँ आते थे और अन्त समय तक काशी में ही निवास करते थे। कभी-कभी मनीषी-वर्ग अपने परिवार के साथ स्वदेश का परित्याग कर काशी में आकर बस जाता था एवं वंशानुक्रम से काशीवासी होकर रहने का उद्योग करता था। यह केवल किसी एक प्रदेश की बात नहीं है, भारत के सभी प्रदेशों का एक-सा इतिहास है। ये पण्डित परस्पर सम्मिलित होकर काशी के विद्वत्समाज का संगठन करते थे। आवश्यकता पड़ने पर ये लोग संदिग्ध विषयों के समाधान द्वारा समस्त देश के हिन्दू-समाज का संचालन करते थे। अन्य किसी प्रदेश में धार्मिक कर्त्तव्य का निर्णय अथवा किसी दार्शनिक तत्त्व की मीमांसा के विषय में प्रयोजन होने पर काशीस्थ विद्वन्मण्डली द्वारा दी गई व्यवस्था ही अग्रगण्य मानी जाती थी। धर्म तथा परापर ज्ञान के विषय में काशी का यह उच्चासन शताब्दियों तक अक्षुण्ण रहा। केवल इतना ही नहीं, संस्कृत-भाषा के प्रत्येक विभाग की साहित्य-सृष्टि में भी काशी का प्राधान्य बना रहा।

[२]

तेरहवीं शताब्दी

सन् ११९४ ई० में बनारस मुसलमान-शासन के अधीन हुआ था। प्रसिद्धि है कि सुलतान अलतमस के समय विश्वनाथ-मन्दिर की पुनः शुद्धि हुई थी। गुजरात के प्रसिद्ध जैन सेठ वस्तुपाल ने इस मन्दिर में पूजा के निमित्त एक लक्ष मुद्राएँ भेजी थीं।[१]

१. द्रष्टव्य : प्रबन्धकोष, कलकत्ता, १९३५, पृ० १३७।

सन् १२९६ ई० में पद्मेश्वर-मन्दिर का निर्माण हुआ था[1]। यह विश्वेश्वर-मन्दिर के निकट था।

१३वीं शती में काशीवासी आचार्यों में **कविकान्त सरस्वती** का नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है। उन्होंने 'विश्वादर्श' नाम का एक धर्मशास्त्र-ग्रन्थ बनाया था। वह श्लोकबद्ध महाग्रन्थ चार काण्डों में विभक्त था। उक्त चार काण्डों के नाम और श्लोक-संख्या—सदाचारकाण्ड ४८ श्लोक, व्यवहारकाण्ड ४४ श्लोक, प्रायश्चित्तकाण्ड ५० श्लोक और ज्ञानकाण्ड या मुमुक्षुकृत्यकाण्ड ५३ श्लोक। इन चारों काण्डों की श्लोक-संख्या का योग १९५ था। यह ग्रन्थ उस समय और उसके बाद भी पण्डित-समाज में प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में परिगणित होता रहा। 'हेमाद्रि' के 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' के परिशेष-खण्ड में (भाग २, पृ० ११२) तथा 'आदित्यभट्ट' के 'कालादर्श' में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। कविकान्त ने अपने ग्रन्थ में विज्ञानेश्वरकृत 'मिताक्षरा' का उल्लेख किया है। 'आदित्यभट्ट' का समय ज्ञात नहीं है; परन्तु माधवाचार्य के 'कालमाधव' में आदित्यभट्ट-कृत 'कालादर्श' का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि आदित्यभट्ट माधवाचार्य से प्राचीन थे। इसी कारण कविकान्त को १३वीं शती का ग्रन्थकार माना जा सकता है।[2] उनके पिता का नाम 'गीतार्थप्रवीण श्रीभट्टाचार्य आदित्य' पाया जाता है। कविकान्त काशीवासी थे, यह उनकी इस उक्ति से स्पष्ट है—

गाङ्गं यत्रामृतं पुण्यं लिङ्गं यत्रामृतं स्थितम्।
कस्मिन्नस्मिन् महाक्षेत्रे किं बहूक्त्या सुखं वसेत्॥
भक्तिरत्नमनर्घ्यं हि देहि विश्वेश्वर त्वयि।
प्रतिमर्त्यं भवेद्गेहे कैवल्यं निखिलं खलु॥

कविकान्त के पिता का नाम 'आदित्य' और आश्रयदाता राजा का नाम 'नागार्जुनतनय धन्यराज' था। यह राजा संभवतः काशी के ही रहे हों। ये आचार्य काशीविश्वेश्वर की शरण में स्वयं काशी आये थे या इनके पूर्वज आये थे, इसका पता नहीं चल सका।

प्रतीत होता है कि इसी शती में मनुसंहिता के सुप्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूकभट्ट भी काशी में निवास करते थे। ये वंगदेशीय नन्दनग्रामवासी वारेन्द्र ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न पण्डित थे। इनके पिता का नाम दिवाकरभट्ट था। इन्होंने काशी में

---

१. द्रष्टव्य : Fuhrer, The Sharqui Architecture of Jaunpur, पृ० ५१।

२. अध्यापक वेलङ्कर के मत से कविकान्त का समय १२वीं शती का अन्त तथा १३वीं शती का आरंभ है। आचार्य काने कहते हैं कि इनका समय ११वीं शती के बाद तथा १२वीं शती के पूर्व है। Sri S. A. Tenkshe ने विश्वादर्श का मूल अंश Journal of Bombay University (Sept., 1938) में प्रकाशित किया था। P. K. Gode ने Studies in Indian Literary History, Vol. II, पृ० २५५ से २६२ में कविकान्त के विषय में आलोचना की है।

रहकर पण्डितों के सहयोग से मनुसंहिता पर मन्वर्थमुक्तावली नाम की टीका रची थी। टीका के प्रारम्भ में इन्होंने अपना परिचय यों दिया है—

गौडे नन्दनवासिनाम्नि सुजनैर्वन्द्ये वरेन्द्र्यां कुले
श्रीमद्भट्टदिवाकरस्य तनयः कुल्लूकभट्टोऽभवत्।
काश्यामुत्तरवाहिजह्नुतनयातीरे समं पण्डितै-
स्तेनेयं क्रियते हिताय विदुषां मन्वर्थमुक्तावली॥

बुलर (Buhler) प्रभृति प्रत्नवित् कुल्लूक का समय १५वीं शती मानते हैं। परन्तु, आचार्य काने ने कहा है कि रघुनन्दन, वर्धमान, श्रीनाथ, गोविन्द, चण्डेश्वर आदि स्मार्त्त निबन्धकारों ने अपने-अपने ग्रन्थों में कुल्लूक का उल्लेख किया है, इससे इनका आविर्भाव-काल १५वीं शती के पूर्व होना चाहिए। इस निबन्ध में कुल्लूक भट्ट का समय १३वीं शती माना गया है।[1]

ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है कि सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र-सन्त ज्ञानेश्वर भी काशी-दर्शन करने आये थे। यह १३वीं शती की बात है। प्रसिद्धि है कि मुद्गलाचार्य के यज्ञ में बहुसंख्य ब्राह्मण उपस्थित हुए थे। वहाँ ज्ञानेश्वर को अग्र-सम्मान देने का प्रस्ताव उपस्थित होने पर पण्डितों में मतभेद देखा गया। उस समय एक हस्तिनी की सूंड़ में एक माला डाल दी गई और हस्तिनी जिसे माला पहना दे उसका अग्रसम्मान किया जाय, यह निश्चय हुआ। हस्तिनी ने माला ज्ञानेश्वर को पहना दी।

इस शती में और एक विशिष्ट ग्रन्थकार काशी में निवास करते थे। इनका नाम था **सरस्वतीतीर्थ**। इनका पूर्वाश्रम का नाम 'नरहरि' था। इनके एक ज्येष्ठ भ्राता थे, जिनका नाम 'नारायण' था। नारायण को बहुत-से राजाओं का सम्मान प्राप्त था। वे धन-सम्पत्ति से जैसे समृद्ध थे, विद्या-सम्पत्ति से भी वैसे ही परिपूर्ण थे। नरहरि के पिता का नाम 'मल्लिनाथ' और माता का नाम 'नागम्मा' था। मल्लिनाथ ने सोमयाग किया था। मल्लिनाथ के पिता का नाम 'नरसिंह' और पितामह का नाम 'रामेश्वर भट्ट' था। ये वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। आन्ध्रदेश इनका आदि-निवास था।

'नरहरि' संन्यास लेकर 'सरस्वतीतीर्थ' नाम ग्रहण कर काशी में ही बस गये थे। इनका मुख्य ग्रन्थ है—शङ्कराचार्य-प्रणीत 'प्रपञ्चसार' की 'बालचित्तानुरञ्जनी' टीका। इन्होंने कहा है—

---

१. प्रसिद्धि है कि ई० १३वीं शती के मध्य भाग में उदयनाचार्य भादुड़ी ने बंगदेश में कौलीन्य-व्यवस्था तथा परिवर्त धर्म के विषय में जो सामाजिक संस्कार का बीड़ा उठाया था, उसमें कुल्लूकभट्ट उनके प्रधान सहकारी थे। कोई-कोई (जैसे लघुभागवतकार) कुल्लूक को उदयन का शिष्य भी समझते हैं।) द्रष्टव्य : 'बंगे नव्यन्यायचर्चा', दिनेशचन्द्र भट्टाचार्यकृत, पृ० २५७)।

तर्के कर्कशकेलिना बलवता वेदान्तविद्यारसे
मीमांसागुणमांसलेन परितः सांख्येऽप्यसंख्योक्तिना।
साहित्यामृतसागरेण फणिनो व्याख्यासु व्याख्यावता
काश्यां तेन महाशयेन किमपि ब्रह्मामृतं पीयते॥
काश्यां सरस्वतीतीर्थयतिना तेन लिख्यते।
टीका प्रपञ्चसारस्य बालचित्तानुरञ्जनी॥
क्व गूढा शङ्करस्योक्तिः क्व चाहं मन्दतागुणः।
तथाप्यत्र प्रवृत्तोऽस्मि शिष्यनिर्बन्धमोहितः॥

उनका दूसरा ग्रन्थ था—'स्मृतिदर्पण'। मालूम होता है कि यह पूर्वाश्रम में ही रचा गया था। उन्होंने काशी में रहकर 'तर्करत्न' नामक ग्रन्थ और उसकी टीका 'दीपिका' का भी प्रणयन किया था; क्योंकि इस ग्रन्थ की पुष्पिका में उन्होंने अपने को 'सरस्वतीतीर्थपरमहंसपरिव्राजकाचार्य' लिखा है। उन्होंने 'काव्यप्रकाश' पर भी 'बालचित्तानुरञ्जनी' नामक एक टीका रची थी। कालिदास के रघुवंश, कुमारसंभव तथा मेघदूत पर भी उनकी टीकाएँ हैं। मेघदूत पर लिखी गई उनकी टीका का नाम है—'विद्वन्मनोरञ्जनी'। मीमांसारत्न नाम के उनके एक और ग्रन्थ का पता चलता है। उसकी एक खण्डित प्रति बड़ौदा ग्रन्थागार में संरक्षित है।

'सरस्वतीतीर्थ' का समय १३वीं शताब्दी है; क्योंकि उनकी काव्यप्रकाश की टीका का रचनाकाल है—संवत् १२९८ वि०, अर्थात् १२४१ ई०। उसका रचना-स्थान आन्ध्र-देशान्तर्गत 'त्रिभुवनगिरि' है।

[३]

चौदहवीं शताब्दी

चौदहवीं शती में 'प्रक्रियाकौमुदी' के रचयिता रामचन्द्र की काशी में बहुत अधिक ख्याति थी।[१] प्रक्रियाकौमुदी पाणिनीय व्याकरण पर एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में अष्टाध्यायी का सूत्र-क्रम नहीं माना गया है। सिद्धान्तकौमुदीकार 'भट्टोजिदीक्षित' से प्रायः ३०० वर्ष पूर्व ही रामचन्द्र ने अष्टाध्यायी का क्रमोल्लङ्घन

१. प्रक्रियाकौमुदी के सम्पादक (बम्बई संस्कृत-सीरीज, १९३१) के० पी० त्रिवेदी ने रामचन्द्र के काल का निरूपण किया है—सन् १३५० से १४०० ई० ((Introduction, p. 44)। Colebrook ने रामचन्द्र का समय सन् १२४३ ई० माना है (M. Essays Vol. II. New Editon, p. 237); परन्तु यह ठीक नहीं है; क्योंकि रामचन्द्र के पुत्र नृसिंह ने पिता द्वारा विरचित प्रक्रियाकौमुदी की प्रतिलिपि सन् १४२३ ई० में की थी (Journal Asiatic Society of Bengal, 1905, p. 593 etc.)। रामकृष्णगोपाल भण्डारकर ने अपनी रिपोर्ट (Reports 1883-84, pp. 58 etc.) में रामचन्द्र का समय सन् १४५० ई० निश्चित किया है। म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने युक्ति-प्रदर्शनपूर्वक इस मत का खण्डन किया है। (द्रष्टव्य : Descriptive Catalogue, Asiatic Society of Bengal, Vol. III, p. 695).

कर दिया था। रामचन्द्र आन्ध्रदेश के तैलङ्ग ब्राह्मण थे। ये ऋग्वेदी तथा कौण्डिन्य गोत्र के थे। ये अनेक शास्त्रों में निष्णात थे। इन्होंने बहुत-से विषयों पर ग्रन्थ-रचना की थी। व्याकरण के सिवा धर्मशास्त्र, वैष्णवशास्त्र, वेदान्त तथा ज्यौतिष के भी ये विशेषज्ञ थे। धर्मशास्त्र में इनका 'कालनिर्णय-दीपिका' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ 'अनन्त उपाध्याय' के 'तिथिनिर्णय' का सार-संकलनरूप है। यह एशियाटिक सोसाइटी (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित हुआ है। वैष्णव-सिद्धान्त पर लिखित इनके ग्रन्थ का नाम है—वैष्णव-सिद्धान्त-सद्दीपिका। F. E. Hall साहब ने अपनी सूची (पृ० १८७) में कृष्णकिङ्करप्रक्रिया नाम के एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। संभवतः, यह भी उन्हीं की रचना है।

रामचन्द्र के प्रपितामह का नाम 'अनन्त' था। 'रामस्वामी' नामक अपने एक यति शिष्य से उन्हें आचार्य की उपाधि प्राप्त हुई थी। अनन्त के पुत्र का नाम 'नृसिंह' और नृसिंह के पुत्र का नाम 'कृष्ण' था। ये कृष्ण ही रामचन्द्र के पिता थे। कृष्ण के बड़े भाई का नाम 'गोपाल' था। रामचन्द्र के पितामह आगम-निगम, न्याय-वैशेषिक ज्यौतिष और मीमांसा में निष्णात थे। उन्होंने राजसभा में बहुत-से प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर प्रचुर यश प्राप्त किया था और 'श्रुतिसार' नामक एक ग्रन्थ का भी निर्माण किया था।

रामचन्द्र ने अपने ज्येष्ठ पितृव्य 'गोपाल' के निकट अध्ययन किया था। (द्रष्टव्य : काल-निर्णय-दीपिका)। रामचन्द्र के पिता कृष्णाचार्य भी अष्टादश विद्याओं में निष्णात थे। रामराजा की सभा में उन्होंने बड़ा सम्मान प्राप्त किया था।[1] नृसिंहाचार्य ने पिता रामचन्द्र का 'सर्वशास्त्रसकलमहागमाचार्य परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीगोपालपूज्यपादशिष्यरामचन्द्राचार्य' कहकर उल्लेख किया है। ये नृसिंह १५वीं शती के पण्डित थे; क्योंकि सन् १४२३ ई० में ये जीवित थे।

संभवतः रामचन्द्र के समय में ही एक और महापुरुष काशी में निवास करते थे, जिनका नाम श्रीधर स्वामी था।[2] वे सदा काशीधाम में ही निवास करते थे, ऐसी प्रसिद्धि है। वे 'चित्सुखाचार्य' के परवर्त्ती थे। उनके बनाये हुए ग्रन्थों में गीता की टीका 'सुबोधिनी' तथा श्रीमद्भागवत की टीका 'भावार्थदीपिका' प्रसिद्ध हैं। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव श्रीस्वामीजी को असाधारण श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। विष्णुपुराण के ऊपर भी स्वामीजी ने एक टीका लिखी है। उसका नाम आत्म-प्रकाश या स्वप्रकाश है। इसमें चित्सुखाचार्य-विरचित विष्णुपुराणटीका का उल्लेख है। 'श्रीरूपगोस्वामी' की पद्यावली में स्वामीजी द्वारा रचित कई पद्य दिखाई पड़ते हैं। ये सब उनके किस ग्रन्थ से लिए गये हैं इसका पता नहीं चलता।

---

१. ये रामराजा कौन थे? भण्डारकर ने कहा है—ये विजयानगर के राजा थे, किन्तु म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने उनके कथन का खण्डन किया है। (द्रष्टव्य : Descriptive Catalogue, Asiatic Society of Bengal, Vol. III, p. 695)।

२. Sri P. K Gode ने Studies in Indian Literary History, Vol. II, पृ० १६९ से १७५ में श्रीधर का समय सन् १३५०–१४५० ई० निश्चित किया है।

बीरभूमि के विष्णुपुरीजी, स्वामीजी के विशिष्ट भक्त थे। ऐसा माना जाता है कि पुरीजी मध्व-सम्प्रदाय के नहीं थे। उनकी बनाई 'भागवत भक्तिरत्नावली' में इसका स्पष्ट प्रमाण है।

इसी शती में जैनाचार्य 'जिनप्रभसूरि' यात्रा के लिए काशी आये थे।[1] उस समय वाराणसी नगरी ४ भागों में विभक्त थी। उनमें से एक विभाग का नाम था--देववाराणसी, जिसमें विश्वनाथ-मन्दिर और कई जैनमन्दिर थे। उस समय काशी में धातुवाद, रसवाद, मन्त्रविद्या, व्याकरण, तर्क, नाटक, अलङ्कार, शकुनशास्त्र या निमित्तशास्त्र, ज्यौतिष आदि विद्याओं की चर्चा होती थी।

पता चलता है कि इसी शताब्दी में अर्थात् १३०२ ई० में मणिकर्णिकेश्वर-मन्दिर की स्थापना हुई थी।[2]

उस समय काशी में वेदान्तज्ञ संन्यासियों में स्वामी **ज्ञानानन्द** का एक विशिष्ट स्थान था। ज्ञानानन्द के प्रधान शिष्य **प्रकाशानन्द** ने 'वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली' नामक अपूर्व ग्रन्थ का निर्माण किया था। इस ग्रन्थ में वेदान्त के एकजीववाद या दृष्टिसृष्टिवाद का गंभीर पाडित्य के साथ प्रतिपादन किया गया है। 'ज्ञानानन्द' के दूसरे शिष्य थे—स्वामी 'अनुभवानन्द', जो महानैयायिक प्रगल्भाचार्य के वेदान्तविषय के उपदेष्टा थे। 'नानादीक्षित' का कथन है कि प्रकाशानन्द के बहुत-से शिष्य भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में वेदान्त का प्रचार करते थे--

यच्छिष्यशिष्यसन्दोहैर्व्याप्ता भारतभूमयः।
वन्दे तं यतिभिर्वन्द्यं प्रकाशानन्दमीश्वरम्॥

प्रकाशानन्द दृष्टिसृष्टिवादी थे; सृष्टिदृष्टिवादी नहीं। प्रकाशानन्द के पूर्ववर्ती 'कल्पतरु' और 'शास्त्रदर्पण' के रचयिता 'अमलानन्द' भी दृष्टिसृष्टिवादी थे। उनके मतानुसार विश्व-सृष्टि दृष्टिसमकालीन है, किन्तु प्रकाशानन्द का मत है कि दृष्टि ही विश्वसृष्टि है। चित्सुख आदि आचार्य सृष्टिदृष्टिवादी हैं।

इसी शती में अखण्डानन्द नाम के एक और वेदान्तवेत्ता संन्यासी काशी में निवास करते थे। वे 'अखण्डानुभूति' के शिष्य थे। प्रकाशानन्द यति के 'पञ्चपादिकाविवरण' पर उनकी 'तत्त्वदीपन' नाम की टीका है।

[४]

पन्द्रहवीं शताब्दी

रामचन्द्र आचार्य के पुत्र **नृसिंह** के विषय में पहले कहा जा चुका है। उनका समय सन् १४२३ ई० है। इसी समय उन्होंने अपने पिता की 'प्रक्रियाकौमुदी' की प्रतिलिपि की थी। नृसिंह धर्मशास्त्र में सुप्रविष्ट थे। उन्होंने पिता की

---

१. द्रष्टव्य : विविधतीर्थकल्प, शान्तिनिकेतन, सन् १९३४ ई०।
२. द्रष्टव्य : Journal. U. P. Historical Society. Vol. IX. April, 1936.

'कालनिर्णय-दीपिका' पर विवरण नाम की एक टीका लिखी थी। 'प्रयोगपारिजात' उन्हीं की रचना है। नृसिंह के गुरु का नाम कृष्णाचार्य था। ये रामचन्द्र के बड़े भाई के पुत्र थे।[1]

नृसिंह के पुत्र का नाम था **विट्ठलाचार्य**। इन्होंने पितामह की 'प्रक्रियाकौमुदी' पर 'प्रसाद' नाम की सुप्रसिद्ध टीका रची थी। विट्ठल की माता का नाम मणिकाम्बा और गुरु का नाम 'राघवेन्द्रसरस्वती' था। प्रतीत होता है कि ये राघवेन्द्र मध्व-सम्प्रदाय के संन्यासी पण्डित थे एवं इन्होंने बहुत-से वादियों को तर्क में परास्त किया था।[2] विट्ठलाचार्य ने अपनी प्रणति रामेश्वर को, अनन्त को और जगन्नाथाश्रम वेदान्ती को ज्ञापित की है। ये अनन्त सम्भवतः वादिराज को परास्त करनेवाले विट्ठलाचार्य के गुरु-पुत्र अनन्त से अभिन्न होंगे। ये जगन्नाथाश्रम कौन हैं? नृसिंहाश्रम के गुरु एक जगन्नाथाश्रम की प्रसिद्धि है। क्या ये वही थे?

विट्ठल के पुत्र का नाम **लक्ष्मीधर** था। इनका रचा हुआ 'न्यायभास्कर' उस समय एक विशिष्ट ग्रन्थ माना जाता था। विट्ठल-पौत्र अनन्त के 'वेदार्थचन्द्र' नामक ग्रन्थ से इसका पता चलता है।[3] भगवन्नामकौमुदीकार लक्ष्मीधर क्या इनसे भिन्न थे?

लक्ष्मीधर के पुत्र का नाम अनन्ताचार्य था। इन्होंने एक मीमांसा-ग्रन्थ की रचना की थी, जिसका नाम था 'वेदार्थचन्द्र'। यह ग्रन्थ 'वेदार्थदीप' या 'प्रतिभा-विलास' नाम से भी प्रसिद्ध था। अनन्ताचार्य के साथ-ही-साथ काशी-निवासी आचार्यवंश का विवरण समाप्त हुआ। अनन्ताचार्य का समय १५वीं शती का अन्त अथवा १६वीं शती का आरम्भ हो सकता है।

काशी में इस समय ज्यौतिषिक-मण्डली में **मकरन्द** नामक एक प्रसिद्ध सारिणी-रचयिता पण्डित थे। इस सारिणी का उपयोग ज्यौतिष-गणना में किया जाता है। इसका रचना-काल १४०० शकाब्द, अर्थात् सन् १४७८ ई० है।

---

१. नृसिंह के दीपिकाविवरण को Hall साहब ने भ्रम से शास्त्रदीपिका की टीका समझ लिया था। द्रष्टव्य: Hall, पृ० १८७। वस्तुतः, वह 'दीपिका' शब्द 'कालनिर्णय-दीपिका' का वाचक है, न कि 'शास्त्रदीपिका' का।

२. ये राघवेन्द्र कौन थे? एक राघवेन्द्र ने जयतीर्थ और व्यासराज के ग्रन्थों पर टीका रची थी तथा किसी मूल ग्रन्थ का भी निर्माण किया था। उनके गुरु सुधीन्द्र थे, जिन्होंने तंजोरराज रघुनाथ नायक की १७०० शकाब्द में सिंहासन पर स्थापना की थी। इनके कनकाभिषेक के सम्बन्ध में बहुत जगह विवरण मिलते हैं। अध्यापक Glassenapp के मतानुसार राघवेन्द्र का समय सन् १६७१ ई० है। अतएव, ये विट्ठलगुरु राघवेन्द्र नहीं हो सकते।

३. न्यायभास्कर नामक और एक ग्रन्थ का पता चलता है। परन्तु, वह इतना प्राचीन नहीं है। शङ्कर तर्कवागीश और अभिनव वाचस्पतिमिश्र ने कहा है—तत्त्वचिन्तामणि में जिस भास्कर-मत का उल्लेख किया है, वह गङ्गेश के पूर्ववर्ती किसी नैयायिक का मत है। यह भास्कर-मत न्यायभास्कर के रचयिता का मत है। (द्रष्टव्य: 'बंगे नव्यन्यायचर्चा' पृ० १४)।

राघवभट्ट नामक एक महाराष्ट्र-ब्राह्मण उस समय काशी में निवास करते थे। ये सब शास्त्रों में सुपण्डित थे। इन्होंने शारदातिलक नामक सुप्रसिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ पर 'पदार्थादर्श' नाम की टीका रची थी। इस टीका की रचना संवत् १५५० वि० (आकाशेषुशरक्ष्मापरिमिते), अर्थात् सन् १४९३ ई० में 'विश्वेश-पुरी' काशी में ही हुई थी। राघव के पिता 'पृथ्वीधरभट्ट' और पितामह 'रामेश्वर-भट्ट' थे। रामेश्वर जनस्थान (नासिक) में गोदावरी-तट पर निवास करते थे। वह प्रदेश महाराष्ट्र-मण्डल के अन्तर्गत था। ये प्रसिद्ध वादकुशल पण्डितों में अग्रगण्य थे। पृथ्वीधर भट्टमत, वेदान्त और व्याकरण-महाभाष्य का अध्यापन करते थे। पृथ्वीधरभट्ट ही स्वदेश त्याग कर लगभग सन् १४५० ई० में सर्व-प्रथम काशी-वास के लिए आये थे। काशी में ही राघवभट्ट का जन्म हुआ और काशी में ही उन्होंने देह-त्याग किया था—

> कश्चिद्दिनैरतिपवित्रचरित्र एष वाराणसीमभिगतःशिवराजधानीम्।
> तत्रैव वासमकरोत्तदनु प्रतीतकायावसानमवीक्ष्य परिचिन्त्य धीरः॥

राघवभट्ट ने यथाविधि वेदान्त, न्याय, भट्टमीमांसा, गणित, साहित्य, आयुर्वेद, कला, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, संगीत और आगम का अध्ययन किया था। 'राघव' ने शकुन्तला की टीका 'अर्थद्योतनिका' काशी (श्रीविश्वेश्वरपत्तन) में ही रची थी। संभवतः, 'उत्तररामचरित' तथा 'मालतीमाधव' की टीका की रचना भी काशी में ही हुई थी।

'शङ्करमिश्र' का नाम पण्डित-समाज में विशेषरूप से परिचित है। ये सुप्रसिद्ध मैथिल नैयायिक थे। जीवन के अन्तिम समय में ये भी काशीवास करने के निमित्त काशी आये थे। अपने काशी-निवास-काल में इन्होंने कणाद-कृत 'वैशेषिकसूत्र' के ऊपर 'उपस्कार' नामक एक वृत्ति की रचना की थी। इन्होंने 'भेदप्रकाश' या 'भेदरत्नप्रकाश' नामक एक ग्रन्थ की रचना कर अद्वैतवाद के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की थी। यद्यपि शङ्कर ने 'खण्डनखण्डखाद्य' के ऊपर टीका लिखी, तथापि ये भीतर-ही-भीतर द्वैतवादी और शिवभक्त थे। खण्डन की टीका में इन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि पिता भवनाथ के उपदेश को लिपिबद्ध कर रखने के लिए ही मैंने खण्डन की टीका लिखी थी। यह भेदरत्नग्रन्थ 'मधुसूदनसरस्वती' के आविर्भाव-काल से बहुत पहले रचा गया था। संभवतः, काशी में वेदान्तियों के साथ शङ्कर का शास्त्रार्थ हुआ था।[1] भेदरत्न के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा है—

> भेदरत्नपरित्राणे तार्किका एव यामिकाः।

इससे प्रतीत होता है कि मध्ययुग में रत्नस्वरूप भेदवाद की (द्वैतवाद की) रक्षा करना तार्किक लोग अपना कर्तव्य समझते थे। इसीलिए, वे अद्वैतवाद का

१. जम्मू के रघुनाथ-मन्दिर में संवत् १५१९ वि० या १४६२ ई० की लिखी 'भेदप्रकाश' की एक प्रति सुरक्षित है, जिसका उल्लेख Stein के सूचीपत्र में है। इस पुस्तक की शङ्करमिश्र के जीवन-काल में ही काशी में प्रतिलिपि की गई थी।

खण्डन करना अपने पाण्डित्य का परिचायक मानते थे। परवर्ती युग में 'मधुसूदनसरस्वती' ने अपने 'अद्वैतरत्नरक्षण' नामक ग्रन्थ में शङ्करमिश्र की पूर्वोक्त वाणी का उत्तर दिया था—

अद्वैतरत्नरक्षणे तात्त्विका एव यामिकाः।

'नृसिंहाश्रमस्वामी' ने भी 'भेदधिक्कार' नामक ग्रन्थ में भेदवाद का खण्डन किया है। शङ्करमिश्र और उनके निकटसम्बन्धी 'अभिनव वाचस्पतिमिश्र' दोनों ही समकालीन थे। दोनों ही श्रेष्ठ तार्किक तथा स्मार्त्त थे एवं दोनों ही अद्वैतवाद के घोर विरोधी थे। अभिनव वाचस्पतिमिश्र का खण्डनोद्धार तार्किकों की ओर से श्रीहर्ष के खण्डनग्रन्थ का प्रत्युत्तर है। वेदान्त की ओर से इसका उत्तर दिया था—एक बंगाली नैयायिक ने। उस नैयायिक का नाम 'प्रगल्भ' अथवा 'शुभंकर' था। उसके द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम 'खण्डनदर्पण' है। शङ्करमिश्र और अभिनव वाचस्पतिमिश्र उस समय अद्वैतविरोधी विचारधारा के नायक थे। यह बात रघुनाथ शिरोमणि के गुरु वासुदेव सार्वभौम की उक्ति से स्पष्ट होती है—

वाचस्पतिशङ्करयोर्गौतमकृतबुद्धिशास्त्रगर्वितयोः।
निर्वापयामि गर्वमेकं ब्रह्मास्त्रमादाय॥

ये वासुदेव सार्वभौम पहले महानैयायिक थे। उसके बाद वेदान्ती हुए। अन्त में श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रेमभक्ति-सिद्धान्त के पूर्ण अनुगामी हुए। ऊपर लिखित दो ग्रन्थों के सिवा शङ्कर-रचित प्रधान ग्रन्थ ये हैं—(१) उदयनाचार्यकृत ग्रन्थों की टीकाएँ—(क) आत्मतत्त्वविवेक-कल्पलता, (ख) न्यायकुसुमाञ्जलि-कारिका पर आमोद, (ग) त्रिसूत्रीनिबन्ध-व्याख्या, (घ) किरणावलीनिरुक्ति-प्रकाश, (२) वल्लभाचार्यकृत ग्रन्थ की टीका—लीलावती-कण्ठाभरण। (३) गङ्गेश के ग्रन्थ की टीका—चिन्तामणि-मयूख।

शङ्करमिश्र की प्रसिद्ध चतुष्पाठी (चौपाड़ी) उनके 'सर्षप' नामक ग्राम में थी। १४१० शकाब्द (सन् १४८८ ई०) में उनकी चतुष्पाठी में न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका की एक प्रति की प्रतिलिपि की गई थी। यह पुस्तक नेपाल में दृष्टिगोचर हुई है। इससे सिद्ध होता है कि सन् १४८८ ई० में शङ्करमिश्र के घर में अपनी एक चतुष्पाठी थी।[1]

१५वीं शती में काशीवासी पण्डितों में 'नरहरि विशारद भट्टाचार्य' का अति उच्च स्थान था। ये वंगदेशीय थे। उस समय के गौडमण्डल में उनके सदृश प्रतिभाशाली पण्डित बहुत ही कम थे। मिथिला में शङ्करमिश्र, अभिनव वाचस्पतिमिश्र प्रभृति के सदृश वंगदेश में **नरहरि विशारद** और उनके पुत्र तथा शिष्य **वासुदेव सार्वभौम** की अनुपम प्रतिष्ठा थी। उस समय यवनों के अत्याचार से

१. शङ्करमिश्र के विषय में द्रष्टव्य : गोपीनाथ कविराजकृत Gleanings from the Histery and Bibliography of Nyaya Vaisesika Literature, pp. 41-45.

बहुत-से मनीषी विद्वान् आत्मसम्मान की रक्षा के लिए वंगदेश छोड़कर विभिन्न स्थानों में जाकर बसने लगे थे। नरहरि विशारद भी नवद्वीप छोड़कर काशी पधारे।[1] यह चैतन्य महाप्रभु के जन्म से पहले की बात है। मालूम होता है सन् १४७६ ई० के आस-पास यह घटना घटी थी। विशारद महापण्डित थे वेदान्त, नव्यन्याय, स्मृति प्रभृति विषयों में उनकी असाधारण व्युत्पत्ति थी। न्यायशास्त्र में उन्होंने तत्त्वचिन्तामणि पर एक टीका रची थी। प्रत्यक्ष तथा अनुमानखण्ड के ऊपर वह टीका रही होगी, ऐसा अनुमान है। वह टीका सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। परन्तु, वासुदेव सार्वभौम ने अपने ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर अपने पिता के वचन 'गुरुवचन' कहकर उद्धृत किये हैं। ये सब वचन अनुमानतः विशारद की टीका के ही वचन होंगे। यह टीका विशारद ने नवद्वीप में रहते समय ही बनाई होगी। वासुदेव के छोटे भाई का नाम विद्यावाचस्पति था। ये गौडराजधानी में द्वारपण्डित (सभापण्डित) थे। उन्होंने स्वकृत तत्त्वचिन्तामणिटीका में कहीं-कहीं विशारद के वचन उद्धृत किये हैं। विशारद का ग्रन्थ विभिन्न देशों में विद्वत्समाज में पठित तथा आलोचित होता था। नरपति उपाध्याय पक्षधरमिश्र प्रभृति धुरन्धर पण्डितों को भी इनके मत का गौरव मानना पड़ा था। विशारद का एक स्मृतिनिबन्ध भी था, जो अब लुप्त हो गया है। उस समय उसका एक प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में आदर होता था। किसी-किसी का अनुमान है कि वह ग्रन्थ सन् १४७६ ई० के कुछ ही बाद बनाया गया था।[2] तत्कालीन बहुत-से स्मार्त्त ग्रन्थों तथा उनकी टीकाओं में भी विशारद के मत की समीक्षा दीख पड़ती है। कुछ लोग शूलपाणि तथा विशारद को समकालीन मानते हैं।

विशारद महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के मातामह नीलाम्बर चक्रवर्ती के सहाध्यायी थे, यह बात वैष्णव कवि कविकर्णपूर तथा कृष्णदास कविराज की उक्तियों से ज्ञात होती है। विशारद और नीलाम्बर प्रायः समवयस्क ही होंगे। विशारद की धर्मपत्नी का नाम भागीरथी था।

निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य **हरिव्यासदेव** काशी में निवास करते थे। उन्होंने अपने हाथ से परमवैष्णव प्रतिष्ठापनाचार्य रामार्य के पुत्र कृष्णदेव द्वारा विरचित नृसिंहपरिचर्या नामक वैष्णव ग्रन्थ की प्रतिलिपि काशी में की थी। इस प्रतिलिपि का काल संवत् १५१५ वि० या सन् १४५८ ई० है। यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के भाष्यकार महीदास या महीधर ने १६४० वि० अथवा सन् १५८३ ई० में अपने उपयोग के लिए यह पुस्तक खरीदी थी। इस विषय का विवरण उस पुस्तक के आरम्भ-पृष्ठ पर अङ्कित है। काशी गवर्नमेंट संस्कृत-

---

१. जयानन्द ने चैतन्यमङ्गल में लिखा है—'विशारद निवास करिला वाराणसी'। वासुदेव सार्वभौम पुरुषोत्तम-पुरी क्षेत्र में गये। विद्याविरिञ्चि और विद्यानन्द नामक इनके दो भाइयों ने नवद्वीप नहीं छोड़ा।

२. द्रष्टव्य : वंगे नव्यन्याय-चर्चा, पृ० ४९।

कॉलेज के ग्रन्थालय में सुरक्षा के लिए समानीत महीधर के सम्पूर्ण हस्तलिखित संग्रह का निरीक्षण करते समय यह बात मेरे ज्ञानगोचर हुई। इससे प्रतीत होता है कि हरिव्यासदेव १५वीं शती में काशी में थे।

हरिव्यासदेव ने दशश्लोकी पर दो टीकाएँ रची थीं—एक का नाम 'वेदान्त-सिद्धान्तरत्नाञ्जलि' और दूसरी का नाम 'सिद्धान्तकुसुमाञ्जलि' था। पहली टीका मैंने काशी के सुप्रसिद्ध पण्डित स्वर्गीय श्रीदामोदरलाल शास्त्री के घर पर उनके संग्रह में देखी थी। यह १९१६ या १७ ई० की बात है। दूसरी टीका निर्णय-सागर यन्त्रालय से लगभग सन् १९२५ ई० को प्रकाशित हुई थी। इन दोनों टीकाओं को मिलाने का अवसर मुझे नहीं मिला, इसलिए ये दो टीकाएँ पृथक्-पृथक् हैं या एक ही, इसका पता नहीं है।

१५वीं शती में **प्रगल्भाचार्य** (नामान्तर शुभंकर) का काशीस्थ दार्शनिक पण्डित-समाज में अति उच्च स्थान था। कहा जाता है कि ये सर्वशास्त्रनिरूढचेता थे। ये वंगदेशीय वारेन्द्र-श्रेणी के शाण्डिल्यगोत्रीय कुलीन ब्राह्मण थे। उनका वंश लाढ़ी के नाम से विख्यात था, जो वर्तमान समय में 'लाहिड़ी' नाम से पुकारा जाता है। इनके पिता का नाम नरपतिमहामिश्र था। इन्होंने 'न्यायप्रकाश' नामक व्याकरण-ग्रन्थ का निर्माण किया था। पिता ने स्वयं प्रगल्भ को किरणावली पढ़ाई थी। प्रगल्भ की माता का नाम जाह्नवी था। वह गौडदेशवासी (वंगवासी) थे, यह बात उनकी द्रव्यप्रागल्भी टीका से स्पष्ट प्रतीत होती है। उत्कल या कामरूप उनका देश नहीं है, यह उन्होंने स्वयं कहा है। इस वंश के आदिपुरुष पीताम्बर थे। उनके पुत्र का नाम था लोकनाथ लाहिड़ी। १३वीं शती के मध्य में इस वंश में बली अथवा वल्लभाचार्य का जन्म हुआ था। वल्लभाचार्य का विवाह उदयनाचार्य की पुत्री लीलावती से हुआ था। उनके द्वितीय पुत्र के प्रपौत्र थे—पूर्वोक्त नरपतिमहामिश्र। नरपति के चतुर्थ पुत्र प्रगल्भ थे।[१]

प्रगल्भाचार्य ने ही सर्वप्रथम काशी में 'तत्त्वचिन्तामणि' का अध्यापन आरम्भ किया था। उन्होंने तत्त्वचिन्तामणि ग्रन्थ के चारों खण्डों पर टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त किरणावलीप्रकाश के द्रव्य और गुण भाग के ऊपर भी उनकी टीका थी। गुणांश की टीका अब नहीं मिलती। उनका 'खण्डनदर्पण' प्रकाशित हो चुका है। 'न्यायलीलावती-दीधिति' पर भी उनकी टीका थी।

प्रगल्भाचार्य वासुदेव सार्वभौम से वय में ज्येष्ठ थे, किन्तु समकालीन थे। संभवतः, पक्षधरमिश्र से भी वे कुछ पूर्ववर्ती थे। वासुदेव ने अपनी टीका में कहीं-कहीं प्रगल्भ के मत की आलोचना की है। यद्यपि वह अद्वितीय नैयायिक थे और नव्यन्याय के क्रमविकास में युगपरिवर्तनकारी थे, तथापि उनके खण्डनदर्पण को देखने से प्रतीत होता है कि वे वेदान्ती थे। उनके अध्यापक थे काशी के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी अनुभवानन्द, जो स्वामी ज्ञानानन्द के शिष्य थे।

---

१. द्रष्टव्य : वंगे नव्यन्यायचर्चा, पृ० २४९-५९।

प्रगल्भ वारेन्द्र देश छोड़कर कब काशी आये, यह कहना कठिन है; परन्तु मालूम होता है कि वह स्वयं ही काशी आये थे। उनके पिता ने स्वदेश-त्याग नहीं किया था।

'नरपति' वैयाकरण तथा नैयायिक थे। प्रगल्भ स्वदेश में अपने पिता से ही न्याय-वैशेषिक का पाठ समाप्त कर वेदान्त पढ़ने के लिए काशी आये थे। यहाँ उन्होंने वेदान्त का अध्ययन, उस समय के सर्वप्रधान वेदान्ती संन्यासी से किया था।

प्रगल्भ की न्यायशास्त्र की विद्वत्ता काशी में व्याप्त हो गई थी और दीर्घकाल तक वह अक्षुण्ण रही, इस अनुमान का कारण है—१७वीं शती के निर्णयसिन्धुकार कमलाकरभट्ट के समान विख्यात पण्डित ने भी अपने व्यापक पाण्डित्य के वर्णन के प्रसंग में अपना 'न्याये प्रायः प्रगल्भः' कहकर उल्लेख किया है।[1]

प्रगल्भ के प्रधान शिष्य थे—बलभद्रमिश्र, जिनकी आलोचना आगे की जायगी। यह भी वंगदेशीय थे और काशी में निवास करते थे।

१५वीं शती से ही काशी की सारस्वत साधना ने चारों ओर महत्त्व प्राप्त किया। श्रीहर्ष ने १२वीं शती में काशी में रहकर ही अपने सुप्रसिद्ध 'खण्डनखण्डखाद्य' की रचना की थी। उनके पिता का नाम श्रीहीर कवि था और माता का नाम मामल्लदेवी। उस समय काशी कान्यकुब्ज-राज्य के अन्तर्गत थी। उसके राजा का नाम था जयचन्द्र या जयन्तचन्द्र। श्रीहर्ष ने शास्त्रार्थ में विजय-प्राप्त करने के कारण कान्यकुब्जराज या काशीराज से पाण्डित्य के पुरस्काररूप में ताम्बूलद्वय और आसन प्राप्त किया था। यही राजा जयचन्द्र सन् ११९३ ई० में यवनों के द्वारा पराजित हुए थे। उस समय काञ्चीशारदामठ अथवा कामकोटिपीठ के अध्यक्ष चन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वती ने कावेरी-तीरवासी प्रेमनाथ पार्वतीतनय सीतापति को संन्यास-दीक्षा देकर अद्वैतानन्द नाम से मठाधीश नियुक्त कर निवासार्थ काशी भेजा था। अद्वैतानन्द का 'ब्रह्मविद्याभरण' प्रसिद्ध है। अद्वैतानन्द का नामान्तर 'चिद्विलास' तथा 'आनन्दबोधाचार्य' था। प्रसिद्धि है कि उन्होंने श्रीहर्ष को शास्त्र-विचार में पराजित किया था।[2] यह कहाँ तक सत्य है, कहा नहीं जा सकता। किन्तु, यह बात सदाशिवेन्द्र यति की गुरुरत्नमालिका में भी कही गई है। श्रीहर्ष ने अपने 'स्थैर्यविचारण' नामक प्रकरण में चिद्विलास यति के पाण्डित्य, प्रतिपक्षधर्षणसामर्थ्य तथा अन्यान्य गुणों की प्रशंसा की है। मध्ययुग में काशी में वेदान्त-चर्चा का उत्कर्ष हुआ था। उसकी सूचना एक प्रकार से द्वादश शती में ही हो चुकी थी। वर्तमान निबन्ध में उसकी चर्चा अप्रासंगिक है।

---

१. द्रष्टव्य : कमलाकर-कृत काव्यप्रकाश-टीका का अन्तिम भाग।

२. द्रष्टव्य : पुण्यश्लोकमञ्जरी।

[५]

सोलहवीं शताब्दी

काशी की संस्कृति के इतिहास में १६वीं और १७वीं शती सुवर्णयुग कही जा सकती है। इन २०० वर्षों में काशी में ऐसे पण्डित तथा ग्रन्थकारों का आविर्भाव हुआ था, जिनकी कीर्ति संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। भारत के विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति का मिलनस्थान वाराणसी थी, यह बात पहले कही जा चुकी है। इसका प्रकृष्ट उदाहरण इन दो शतियों में मिल जायगा।

१६वीं शती में कुछ दिनों तक काशी के दाक्षिणात्य पण्डितों में शेषवंश के कृष्णपण्डित नेता थे।[१] उसी समय चित्पावनों में भावागणेश दीक्षित, गुर्जर-पण्डितों में गोपीभट्ट, गौडीय या बंगाली विद्वन्मण्डली में विद्यानिवास भट्टाचार्य तथा मैथिल पण्डितों में रघुपति उपाध्याय अग्रगण्य थे। उस समय बहुसंख्यक महाराष्ट्र-पण्डितों के परिवार काशी में बस चुके थे। उनमें से अधिकांश यवनों के अत्याचार के कारण अथवा कोई-कोई अन्तिम समय काशीवास करने के लिए काशी आकर बसे थे। मिथिला, वंगदेश, गुर्जर, हिमालय का पार्वत्य प्रदेश, नेपाल, सुदूर दक्षिण देश—तैलङ्ग तथा द्रविड देश—आदि विविध प्रदेशों के पण्डित उस समय काशी में उपस्थित थे।

पूर्ववर्णित शेषवंश भट्टभट्ट के नाम से परिचित था। आन्ध्रदेश से इन लोगों का काशी में समागम संभवतः १५वीं या १६वीं शती में हुआ था। विदर बहमनी-वंश के मुसलमानों के आन्ध्रदेश पर आक्रमण करने के बाद वहाँ के पण्डितों ने स्थान त्यागकर यहाँ आना शुरू किया था। शेषवंश के सबसे अधिक प्रसिद्ध पण्डित थे **शेषकृष्ण**। शेषनृसिंह (उनके पिता) उनके गुरु थे। नृसिंह के पिता का नाम था रामचन्द्र। नृसिंह ने गोविन्दार्णव नाम का एक धर्मशास्त्र-ग्रन्थ रचा था। आश्रय-दाता किसी प्रान्त के शासक के नाम से यह ग्रन्थ परिचित है। गोविन्द की राजधानी टाँडा नामक गङ्गा-तटवर्ती किसी स्थान में रही। इस ग्रन्थ में छह भाग हैं—संस्कार, आह्निक, शुद्धि, श्राद्ध, काल और निष्कृति (प्रायश्चित्त)। शेषकृष्ण के छोटे भाई चिन्तामणि ने 'भानुदेव' के 'रसमञ्जरी' नामक ग्रन्थ पर 'परिमल' नाम की एक टीका लिखी थी। उन्होंने 'रुक्मिणीहरण' नामक नाटक, 'वृत्तरत्नाकर' पर 'सुधा' नाम की टीका और 'मेघदूत' पर भी एक टीका लिखी थी। परन्तु, शेषकृष्ण के तुल्य उनकी प्रतिष्ठा नहीं हुई। १६४० वि० या सन् १५८३ ई० में काशीस्थ पण्डितवर्ग ने देवरुख (देवर्षि) ब्राह्मणों के पङ्क्तिपावनत्व के विषय में एक व्यवस्था-पत्र दिया था। इस व्यवस्था-पत्र पर शेषकृष्ण के भी हस्ताक्षर थे।

शेषकृष्ण ने धर्मशास्त्र, व्याकरण, नाटक, चम्पूकाव्य तथा प्राकृत व्याकरण

---

१. शेषकृष्ण तैलङ्ग ब्राह्मण थे। महाराष्ट्र ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध होने के कारण उनका भी कहीं-कहीं महाराष्ट्र के रूप में उल्लेख किया जाता था। (द्रष्टव्य : सम्पूर्णानन्द-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ५०)

पर ग्रन्थ-रचना की थी। धर्मशास्त्र में उनके शूद्राचारशिरोमणि तथा धर्मानुबन्धी श्लोक-चतुर्दशी अथवा शेषकृष्णकारिका प्रसिद्ध हैं। व्याकरण में प्रक्रियाकौमुदी की टीका—प्रक्रियाकौमुदी-प्रकाश, स्फोटतत्त्वनिरूपण (२२ श्लोक) तथा पदचन्द्रिका[1] नामक पद्यमय संस्कृत-व्याकरण प्रधान हैं। शब्दालङ्कार नाम से एक बृहद् ग्रन्थ उनका बनाया हुआ और है। उसी पर प्रक्रियाकौमुदी-प्रकाश प्रतिष्ठित है। उनका यङ्लुगन्तशिरोमणि प्रक्रियाकौमुदी के उस अंश की टीका है, परन्तु यह प्रक्रियाप्रकाश से भिन्न है। इसमें विट्ठल-कृत प्रक्रियाप्रकाश की आलोचना की गई है। प्रक्रियाप्रकाश की ४६ श्लोकात्मक भूमिका में कृष्णजी ने कहा है कि यह ग्रन्थ कल्याण नामक राजकुमार के लिए बनाया गया है। कल्याण के पिता गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती भू-भाग के अन्तर्गत पद्मपुञ्ज नामक किसी राज्य के राजा थे। किसी-किसी का अनुमान है कि ये कल्याण वीरबल के पुत्र कल्याण से अभिन्न हो सकते हैं। वीरबल का तिरोभाव-काल सन् १५८६ ई० है। पूर्वोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त 'उपपदमतिङ्' सूत्र की व्याख्या भी शेषकृष्ण ने लिखी थी। शेषकृष्ण विरचित चार नाटकों के नाम हैं—(क) कंसवध, यह सम्राट् अकबर के अर्थ-सचिव ताण्डव-वंश के राजा टोडरमल के पुत्र कलाविद् गिरिधारी या गोवर्द्धनधारी के अनुरोध से लिखा गया था। विश्वेश्वर की पूजा के अवसर पर इस नाटक का अभिनय किया गया था।[2] गोवर्द्धन इस अभिनय में उपस्थित थे। (ख) सत्यभामाविलास, (ग) मुरारिविजय, इसकी रचना काशी में हुई थी। शेषकृष्ण के पिता नृसिंह उस समय गोदावरी-तीर पर निवास करते थे। (घ) सत्यभामा-परिणय। पारिजात-हरण और ऊषाहरण (अथवा ऊषापरिणय) नामक इनके निर्मित दो चम्पूकाव्य हैं। इनमें प्रथम की रचना नरोत्तम के आदेश से की गई थी। 'क्रियागोपन' नामक काव्य भी शेषकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी 'प्राकृत-चन्द्रिका' पद्यमय प्राकृत-व्याकरण है। अपभ्रंश को छोड़कर और सब प्राकृत भाषाओं का समावेश इसमें है। यह 'पदचन्द्रिका' की अनुजा कही गई है।

कुछ लोग कहते हैं कि सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित शेषकृष्ण के ही विद्यार्थी थे। भट्टोजिदीक्षित गुरुद्रोही थे, ऐसा प्रतीत होता है; क्योंकि शेषकृष्ण की मृत्यु के बाद उन्होंने अपनी प्रौढ़मनोरमा में प्रक्रियाप्रकाश की घोर निन्दा की है। दूसरे पक्ष में कुछ लोग यह भी कहते हैं कि भट्टोजिदीक्षित शेषकृष्ण के नहीं, अपितु उनके पुत्र शेषवीरेश्वर के छात्र थे। पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं कि भट्टोजिदीक्षित ने कृष्णपण्डित की पादुका से शब्दज्ञान (व्याकरणविद्या) प्राप्त किया था। इससे दोनों तात्पर्य लगाये जा सकते हैं—भट्टोजि कृष्णपण्डित के साक्षात् छात्र थे अथवा उनके पुत्र के छात्र थे।

शेषकृष्ण के पुत्र **शेषवीरेश्वर** थे। शेषवंश में शेषनारायण, शेषचिन्तामणि

---

१. यह ग्रन्थ राजा नरोत्तमदेव के अनुरोध से रचा गया था। वह काशी के निकटस्थ ताण्डव-पुर के राजा के छोटे भाई थे। यह ग्रन्थ सारस्वत व्याकरण के आधार पर लिखा गया है।

२. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, Vol. V-VII, पृ० ५९१।

प्रभृति और भी ग्रन्थकार हुए थे। शेषचिन्तामणि की रसमञ्जरी टीका बड़ौदा में विद्यमान है।

अब हम भट्टवंश के सम्बन्ध में कुछ कहेंगे। इस वंश में नारायणभट्ट ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की थी। शायद ये शेषकृष्ण के समकालीन अथवा कुछ वयोज्येष्ठ थे। इनके पिता का नाम रामेश्वरभट्ट, पितामह का नाम गोविन्ददेव, प्रपितामह का नाम चाङ्गदेव और वृद्ध प्रपितामह का नाम नागपाश था। ये ऋग्वेदीय आश्वलायनशाखा के विश्वामित्र-गोत्रीय ब्राह्मण थे। विश्वामित्र-गोत्र-सम्भूत होने के कारण इस वंश को गाधिवंश कहते हैं। नारायण के पिता रामेश्वर ने राम-कुतूहल नाम का काव्य बनाया था।[1] रामेश्वर सन् १५२१ ई० में आदि निवास गोदावरी-तीरस्थ प्रतिष्ठानपुर का त्याग कर सर्वप्रथम काशी आये थे। त्रिस्थलीसेतु की भूमिका में नारायण ने रामेश्वर के विषय में कहा है—

श्रिता वाराणसी येन नगरी न गरीयसी।
यतोऽन्या नगरी हेमनगरीतिमुपेयुषी॥

नारायण का जन्म-काल सन् १४३५ शकाब्द या १५१३ ई० है। उनके पिता तीर्थयात्रा के लिए द्वारका जा रहे थे। उसी समय यात्रा में उनका जन्म हुआ था। जिस समय उनके पिता काशी आये थे, उस समय उनकी अवस्था ८ वर्ष की थी। नारायण के दो छोटे भाई थे—१. श्रीधर और २. माधव। श्रीधर का जन्मकाल सन् १५२० ई० है। नारायण की पत्नी का नाम पार्वती और माधव की पत्नी का नाम ललिता था। नारायण के तीन पुत्र थे—रामकृष्ण (इनकी पत्नी का नाम उमा था), शङ्करभट्ट (प्रथम) और गोविन्द। गोविन्द का ४८ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। नारायणभट्ट अत्यन्त धर्मनिष्ठ तथा तपस्वी पुरुष थे। उनकी नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियों के सम्बन्ध में विविध किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनके समय में उनके सदृश पाण्डित्य कम लोगों में था। मुगल-सम्राट् अकबर ने उनकी ज्ञान-गरिमा, सदाचार, धर्मनिष्ठा और प्रतिष्ठा से प्रसन्न होकर उन्हें 'जगद्गुरु' की उपाधि प्रदान की थी। भानुभट्ट ने अपने द्वैतनिर्णयसिद्धान्त (पृ० १०६) में उनका 'जगद्गुरु श्रीनारायणभट्ट' कहकर उल्लेख किया है।

विभिन्न देशों से बहुसंख्य विद्यार्थी उनके विद्या-सौरभ से आकृष्ट होकर उनके निकट पढ़ने आते थे। उनके महान् व्यक्तित्व की ख्याति सारे देश में व्याप्त थी।

उनके पिता रामेश्वर भी जब काशी में आकर रहने लगे, तब नाना देशों के विद्यार्थी उनके निकट आते थे। कोंकण के अनन्तभट्ट, दामोदरसरस्वती, मिथिला के महेश ठक्कुर तथा गुर्जरदेश के गोविन्द द्विवेदी रामेश्वर के छात्रों में उल्लेख्य हैं। गीतगोविन्द के टीकाकार कन्नौज के शङ्करमिश्र, अच्युतभट्ट तुलसी और विश्वनाथ तुलसी के नाम भी इस प्रसङ्ग में स्मरणीय हैं।

१. रामेश्वरभट्टने 'नैषधीयचरित' के साथ प्रतिद्वन्द्विता कर 'रामकुतूहल' काव्य बनाया था।

प्रसिद्धि है कि नारायणभट्ट ने अपने इष्ट श्रीरामचन्द्र के अनुग्रह से १२ वर्ष-व्यापिनी अनावृष्टि दूर की थी। मुगल-सम्राट् ने इससे प्रभावित होकर काशी के भग्न विश्वनाथ-मन्दिर के पुनर्निर्माण की उन्हें अनुमति दी थी। यह मन्दिर यवन-अत्याचार से ही भग्न हुआ था।[1] कहा जाता है कि काशी के धर्माधिकारी वंश ने नारायणभट्ट की महिमा के कारण उन्हीं को काशी-पण्डित-समाज में अग्र-पूजा देने की अनुज्ञा दी थी। यह सम्मान आजतक एकमात्र भट्टवंश को ही प्राप्य है। अभी तक इन तीन वंशों को अग्रपूजा प्राप्त होती है—धर्माधिकारी वंश, भट्टवंश, और शेषवंश। उस समय में इन वंशों के प्रतिनिधि थे नन्दपण्डित, नारायणभट्ट तथा शेषकृष्ण।

नारायणभट्ट शास्त्रार्थी पण्डित थे। एक बार दिल्ली में टोडरमल के घर पर श्राद्ध के अवसर पर मैथिल और गौड़ पण्डितों को उन्होंने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। उस विचार-सभा में नवद्वीप के सर्वप्रधान पण्डित विद्यावाचस्पति के पुत्र विद्यानिवास भी उपस्थित थे।

नारायणभट्ट ने धर्मशास्त्र में **'प्रयोगरत्न'**, **'धर्मप्रवृत्ति'** तथा माधव-निर्मित 'काल-निर्णय-कारिका की **व्याख्या**' की रचना की थी। उनके बनाये हुए **'जीवच्छ्राद्ध-प्रयोग'**, **'अन्त्येष्टि-पद्धति'**, **'उत्सर्गपद्धति'** और **'रुद्रानुष्ठानपद्धति'** प्रसिद्ध हैं। उनके भतीजे रघुनाथ की श्राद्ध-पद्धति में यह अन्त्येष्टि-पद्धति 'और्द्ध्वदैहिकपद्धति' कही गई है। पुराण के विषय में नारायण ने **'त्रिस्थलीसेतु'** और **'काशी-प्रकरण'** लिखा था। छन्द में उनकी **'वृत्तरत्नाकार की टीका'** प्रसिद्ध है। इसकी रचना सन् १५४५ ई० में हुई थी। मीमांसा में उन्होंने शास्त्रदीपिका पर एक टीका लिखी थी।

नारायणभट्ट ने एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में नृसिंहाश्रम, उपेन्द्राश्रम तथा मधुसूदन-सरस्वती को पराजित किया था, ऐसी प्रसिद्धि है। नारायण के पुत्र शङ्करभट्ट (प्रथम) ने जैमिनि-साम्य से विरचित ईश्वरस्तुतिविषयक स्वकाव्य में नारायण को 'श्री-मत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणधुरीणमीमांसाद्वैतसाम्राज्यधुरन्धर' कहा है।

नारायण के शिष्यों में ब्रह्मेन्द्रसरस्वती और नारायणसरस्वती का नाम प्रधान है। ये ब्रह्मेन्द्र कौन हैं? क्या ये अद्वैतामृतकार और देवेन्द्र के शिष्य ब्रह्मेन्द्र हैं?[2]

नारायण के सहोदर श्रीधर ने **रुद्रपद्धति**, **देव्यनुष्ठानपद्धति** तथा **सापिण्ड्य-दीपिका** अथवा **सापिण्ड्यनिर्णय** की रचना की थी।

---

१. कमलाकरभट्ट ने इस विषय में लिखा है—
'नत्वा गुरूणां चरणारविन्दं जगद्गुरुं भट्टकुलावतंसम्।'
'श्रीरामेश्वरसूरिसुनुरभवन्नारायणाख्यो महान्
येनाकार्यविमुक्तके सुविधिना विश्वेश्वरस्थापना।
तत्पुत्रो विबुधाधिपः क्षितितले श्रीशङ्करस्तत्सुतो
जातो भास्करपूजकः पृथुयशाः श्रीनीलकण्ठो बुधः॥'
उन्होंने यह भी लिखा है कि राजा टोडरमल और नारायणभट्ट ने सन् १५८५ ई० में विश्वेश्वर की स्थापना की। फिर, सन् १६६२ ई० में औरंगजेब ने उसका ध्वंस किया।

२. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, पृ० ७७१।

श्रीधर के छोटे भाई **माधव** ने काशी में ही जन्म ग्रहण किया था। उनकी स्त्री का नाम ललिता था। उनके तीन पुत्र थे—**विश्वनाथ, रघुनाथ** और **प्रभाकर**। रघुनाथ की उपाधि 'सम्राट्स्थपति' थी। विश्वनाथ और रघुनाथ 'यमल' (जुड़वाँ) थे। प्रभाकर की मृत्यु अल्प अवस्था में ही हो गई थी। उन्होंने अल्प वय में, सन् १५९३ ई० में **'रसप्रदीप'** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। प्रभाकर का एक पुत्र था, जिसका नाम था कृष्ण। रघुनाथ के एक कन्या थी, जिसका विवाह **विट्ठलभट्ट तत्सत्** के साथ हुआ था। रघुनाथ ने धर्मशास्त्र में जो ग्रन्थ लिखे, उनके नाम हैं—क. **दशश्लोकी-टीका**; रचना काल सन् १५७८ ई०। ख. **त्रिंशच्छ्लोकीविवरण** (अशौचनिर्णय); रचनाकाल १६४५ वि० या १५८८ ई०। ग. **आह्निकपद्धति** (द्रष्टव्य : वेलङ्कर की पुस्तक-सूची, नं० ६७०); घ. **कालतत्त्व-विवेचन** (रचनाकाल सन् १६२० ई०); गवर्नमेण्ट संस्कृत-कॉलेज, बनारस के पुस्तकालय 'सरस्वती-भवन'की ग्रन्थमाला में यह प्रकाशित है। ङ. **षण्णवतिश्राद्धपद्धति**; च. **रवि-संक्रांतिनिर्णय**; छ. **गोत्रप्रवरनिर्णय**; ज. **अष्टमहाद्वादशीनिर्णय**; झ. **प्रायश्चित्तविवेचन**; ञ. **दर्शश्राद्धपद्धति**; ट. **पर्वनिर्णय**; ठ. **जीवत्पितृकस्य पितृयज्ञाधिकारनिर्णयः**; ड. **गयापद्धति**।[१]

नारायण के ज्येष्ठ पुत्र रामकृष्णभट्ट विख्यात पण्डित थे। मालूम होता है कि वे नारायण के ही छात्र थे। उन्होंने धर्मशास्त्र पर क. **जीवत्पितृककर्मनिर्णय, ख. विभागतत्त्वविचार** (मिताक्षरा-सम्मत); ग. **श्राद्धगणपति** और घ. **रुद्रस्नानपद्धति** —ये चार ग्रन्थ रचे थे। पुराणेतिहास-विषय में उन्होंने महाभारतीय अश्विनीस्तुति पर व्याख्यान लिखा था।

नारायण के द्वितीय पुत्र **शङ्करभट्ट** (प्रथम) उस समय काशी के सर्वप्रधान पण्डित थे। उनकी विरचित ग्रन्थावली निम्नलिखित है—(१) धर्मशास्त्र में—क. **धर्मद्वैतनिर्णय** या **द्वैतनिर्णय**; इसमें उनकी स्वरचित शास्त्रदीपिकाटीका 'प्रकाश' का उल्लेख है। भानुभट्ट ने द्वैतनिर्णयसिद्धान्तसंग्रह में बहुत स्थानों पर इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ में शङ्कर ने धर्माधिकारी नन्द पण्डित के नवरात्रप्रदीप की आनुपूर्वी आलोचना की है।[२] ख. **धर्मप्रकाश** या **सर्वधर्मप्रकाश** (द्र० India Office Catalogue, पृ० ४८२); इसकी रचना काशी में ही हुई थी। भानुभट्ट ने अपने द्वैतनिर्णयसिद्धान्तसंग्रह में इस ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है। ग. **निर्णयचन्द्रिका**; घ. **श्राद्धकल्पसार** या उसकी **विवृत्ति**। शङ्करभट्ट ने अपनी श्राद्धकल्पसारविवृति में अपने पिता का **'सर्वधर्म-प्रवक्ता'**, **'विबुधानन्ददायी'**, **'बृहतामुपदेशगुरुः'** कहकर निर्देश किया है। (२) मीमांसा में—क. **मीमांसाबालप्रकाश**; ख. **मीमांसासारसंग्रह** (पद्यमय); ग. **शास्त्रदीपिका**-

---

१. द्रष्टव्य : म० म० हरप्रसाद शास्त्री-कृत Asiatic Society of Bengal Catalogue, नं० २३१७, पृ० ४१०।

२. द्रष्टव्य: J. R. Gharpure द्वारा सम्पादित द्वैतनिर्णय, बम्बई, १९४१, पृ० १४७।

टीका 'प्रकाश'; घ. विधिरसायनदूषण या खण्डन।[1] (३) काव्य में—क. जैमिनि-साम्य से की गई ईश्वर-स्तुति (बनारस संस्कृत-कॉलेज के सरस्वती-भवन में है); यह श्लेष-काव्य है। इसके साथ स्वोपज्ञ टीका भी है। उपलब्ध ग्रन्थ ३३वें श्लोक से प्रारम्भ होता है और अन्तिम श्लोक-संख्या १५० है। ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार है—**इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणधुरीणमीमांसाद्वैतधुरन्धरश्रीभट्टनारायणात्मज-भट्टशङ्करकृतं मीमांसासिद्धान्तोपनिबन्धनेश्वरस्तुतिपरं काव्यं तट्टीका च समाप्ता।** ख. गाधिवंशानुचरित। म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने इसी काव्य के आधार पर Indian Antiquary (पृ० ७—१३) १९१२ ई० में एक विवरण प्रकाशित किया था। शङ्करभट्ट के शिष्य थे—**मल्लारिभट्ट और भट्टोजिदीक्षित।**

रघुपति उपाध्याय भी १६वीं शताब्दी के एक विशिष्ट ग्रन्थकार थे। ये सन् १५८३ ई० में, काशी में तीरभुक्ति पण्डितों के नेता थे।[2]

अब धर्माधिकारी-वंश के विषय में कुछ कहा जायगा। इस वंश में सर्वश्रेष्ठ पण्डित थे नन्द पण्डित। ये लोग पहले निजाम-राज्य के अन्तर्गत 'विदार' नामक स्थान में रहते थे। बाद में काशी आकर बस गये। काशीवासी मुद्गलगोत्रीय लक्ष्मीधर पण्डित ने दिल्ली के सम्राट् से 'धर्माधिकारी' उपाधि प्राप्त की थी। वे रामभक्त थे। उन्होंने अपने नाम से हिन्दू-समाज में धर्म-व्यवस्था देने की अनुमति प्राप्त की थी। नन्द पण्डित लक्ष्मीधर की ५वीं पीढ़ी के वंशधर थे।

लक्ष्मीधर के दो पुत्र थे—कृष्ण और गोविन्द। कृष्ण का अल्प वय में ही देहावसान हो गया था। उसके बाद गोविन्द ने अपना देश त्याग कर काशी-वास करने का संकल्प किया। उस समय कृष्ण के एकमात्र पुत्र महीपति की अवस्था केवल ४ वर्ष की थी। उसे भी साथ लाये; किन्तु अपने पुत्रों को विदार में ही छोड़ आये। काशी आकर उन्होंने प्रयत्नपूर्वक भ्रातुष्पुत्र की विद्याशिक्षा का प्रबन्ध किया। महीपति के दो पुत्र हुए—शङ्कर और अनन्त। अनन्त के तीन पुत्र हुए— **कृष्ण, राम** और **गणेश**। इस राम के ही कनिष्ठ पुत्र का नाम था **नन्द**। राम के ज्येष्ठ पुत्र का नाम गोविन्द था, जिनकी बनाई हुई 'श्राद्ध-दीपिका' पुस्तक किसी-किसी स्थान में उपलब्ध होती है।[3]

नन्द पण्डित ने स्वरचित **माधवानन्द महाकाव्य** में अपने पिता राम पण्डित के वर्णनप्रसङ्ग में लिखा है—**'वेलावारितमण्डलाखिलमहीधर्माधिकाराग्रणीः', 'भुवि विख्यातः', 'प्रत्यक्ष-वाचस्पतिः'**। नन्द पण्डित के अधिकांश ग्रन्थ धर्मशास्त्र-विषयक ही हैं।

---

१. तत्त्वबिन्दु-टीका की भूमिका (पृ० ११३) में यह ग्रन्थ शङ्करभट्ट-कृत कहा गया है। शम्भुभट्ट ने प्रभावली (पृ० ३६) में विधिरसायनखण्डनकार को 'प्रकाश'-कर्ता कहा है। यह 'प्रकाश' ग्रन्थ शास्त्रदीपिका-प्रकाश भी हो सकता है और मीमांसबालप्रकाश भी हो सकता है।—ले०

२. द्रष्टव्य : गङ्गानाथ झा जर्नल, भाग ५, पृ० ३५९—३८१ तथा वङ्गे नव्यन्यायचर्चा, पृ० १०६।

३. बनारस संस्कृत-कॉलेज में श्राद्धसंग्रह नाम की एक पुस्तक हमने देखी थी। उसका लिपिकाल सं० १६६० वि० या १६०३ ई० था। उसका प्रथम पत्र खण्डित था। यह पुस्तक राम पण्डित के पुत्र गोविन्द-कृत है।—ले०

थोड़े बहुत पुराण और काव्य विषयों में भी हैं। धर्मशास्त्र में उनकी बनाई हुई विष्णुस्मृति की टीका केशववैजयन्ती तथा पराशरस्मृति की टीका विद्वन्मनोहरा सुप्रसिद्ध हैं। वैजयन्ती का रचनाकाल १६७९ वि० या १६२३ ई० है। यह कर्णाट के कुण्डप नायक के पुत्र केशव नायक के अनुरोध से[१] लिखी गई थी। इस ग्रन्थ की एक प्रति बनारस संस्कृत-कॉलेज में है (पृ० सं० १–५५)। इस टीका में उनकी पूर्वरचित विद्वन्मनोहरा, दत्तकमीमांसा, प्रमिताक्षरा प्रभृति पुस्तकों का उल्लेख है। विद्वन्मनोहरा **पराशरमाधव** के आधार पर लिखी गई है।[२]

नन्द पण्डित की अन्य पुस्तकों में—क. **शुद्धिचन्द्रिका** (यह धर्मशास्त्र-विषयक कौशिकादित्य या आदित्याचार्य की षडशीति के अशौचनिर्णय की टीका है); ख. **नवरात्रप्रदीप**; ग. **दत्तकचन्द्रिका**; घ. **दत्तकमीमांसा**; ङ. **श्राद्धमीमांसा**, च. **शूद्राधिकारमीमांसा**; छ. **मांसमीमांसा**; ज. **सापिण्ड्यनिर्णय** और झ. **श्राद्धकल्पलता** (५ स्तवकों में पूर्ण); यह पुस्तक उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता गोविन्द पण्डित की श्राद्धदीपिका के आधार पर लिखी थी। यह साधारणपुर (सहारनपुर) के महाराजाधिराज परमानन्द के आदेश से रची गई थी। इस राजा के वंश का नाम था **सहलिन**। ञ. **स्मृतिसिन्धु**; यह ग्रन्थ परिवंश वर्मा के अनुरोध से लिखा गया था। इसके एक अंश का नाम है—**संस्कारनिर्णय**। ट. **परिवंशविलास**; यह ग्रन्थ महाराजाधिराज महेन्द्र के कुल में उत्पन्न मङ्गोराज के पुत्र परिवंश वर्मा के अनुरोध पर लिखा गया था। दानकौतुक, कालनिर्णयकौतुक, आह्निककौतुक प्रभृति इसी ग्रन्थ के अंशों के नाम हैं। ञ. और ट. चिह्नित पुस्तकें एक ही पुस्तक के दो भाग हो सकते हैं। ठ. **तत्त्वमुक्तावली**; यह कालनिर्णयकार के मत पर आधृत है। इसपर ग्रन्थकार के पुत्र **वेणी पण्डित** की बालभूषा टीका है।[३]

नन्द पण्डित ने पुराण विषय पर **काशीप्रकाश** तथा **तीर्थकल्पलता** नामक दो ग्रन्थ लिखे थे। काशीप्रकाश मदुरा के राजा कृष्ण नायक के गुरु सर्वभट्ट के अनुरोध से लिखा गया था। इनके माधवानन्द महाकाव्य की चर्चा पहले की जा चुकी है। इस पुस्तक की १६५५ वि० या १५९८ ई० में लिखित एक प्रति

---

१. कर्णाट देश में विजयपुर नामक स्थान में वसिष्ठगोत्रीय एक ब्राह्मण-राजवंश था। राजा का नाम था कुण्डप नायक। उनका पुत्र था केशव नायक। केशव नायक-पुत्र अनन्त नायक तथा अनन्त नायक के केशव और रुद्र दो पुत्र थे। कुण्डप के पुत्र केशव अपने पुत्र, पौत्र आदि सबको साथ लेकर काशी आये थे और वहाँ उन्होंने तुलादानादि महादानों का अनुष्ठान किया था :

श्रीविश्वनाथेक्षणकाम्ययाऽसौ पुत्रैश्च पौत्रैश्च युतः प्रपौत्रैः।
गम्भीरवेदीव गजः स्वयूथैः कदाचिदानन्दवनं विवेश॥

२. नन्द पण्डित की विद्वन्मनोहरा पुस्तक—उनकी अपनी व्यक्तिगत पुस्तक—बनारस गवर्नमेन्ट संस्कृत-कॉलेज में खरीदी गई थी। उसका लिपिकाल है १६६३ वि० या १६०६ ई०। प्रतीत होता है कि यह पुस्तक उनके अपने हाथ की लिखी हुई है। यह बाद में गोपीनाथ नामक किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में चली गई थी। महीधरसंग्रह में भी इसकी एक प्रति (अध्याय ५ और ६ मात्र) देखी गई थी।—ले०

३. द्रष्टव्य : एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल कैटलाग, २५४३ और २७४४।

धर्माधिकारी-परिवार में हमने देखी थी। इण्डिया ऑफिस में भी इसकी एक प्रति है।

नन्द पण्डित को प्रयाग के त्रिवेणी-संगम में महाविष्णु की तीन मूर्त्तियाँ मिली थीं। तभी से वे कृष्णजन्मोत्सव मनाने लगे। अभी तक उनके परिवार में कृष्ण-जन्माष्टमी-पर्व पर कृष्णजन्मोत्सव मनाया जाता है। पहले इनके कुलदेवता राम थे, उसके बाद श्रीकृष्ण हुए।

नन्द पण्डित का समय है—वि० सं० १६१० से १६९० या १५५३ से १६३३ ई०।[1] कमलाकरभट्ट ने अपने ग्रन्थ में नन्द पण्डित का नामोल्लेख नहीं किया और नन्द पण्डित ने भी अपने ग्रन्थ में कहीं भी कमलाकर का नाम-निर्देश नहीं किया।

नन्द पण्डित के आश्रयदाता थे—महाराजाधिराज परमानन्द, जो सहलिन-वंशोत्पन्न तथा साधारणपुर (सहारनपुर) के राजा थे। श्रीकाने ने माधवानन्द महाकाव्य का लिपिकाल १६५५ वि० या १५९९ ई० लिखा है। मालूम होता है कि यह पुस्तक नन्द पण्डित की स्वहस्त-लिखित है। श्रीकाने ने यह भी लिखा है कि केशववैजयन्ती का रचनाकाल १६७९ वि० या १६२३ ई० है। इसलिए, काने के मतानुसार नन्द पण्डित का ग्रन्थ-रचनाकाल १५९५ ई० से १६३० ई० ठहरता है। परन्तु, शुद्धिचन्द्रिका की जो प्रति उपलब्ध है, उसका लिपिकाल है १६६० वि० या १६०३ ई०। शुद्धिचन्द्रिका में श्राद्धकल्पलता का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि नन्द पण्डित का ग्रन्थ-रचनादि का समय १५८० ई० से १६३० ई० है।

नन्द पण्डित के दो पुत्र थे, कृष्ण और वेणीदत्त। कृष्ण कुण्डमण्डपनिर्माण तथा साहित्य में निष्णात थे एवं वेणीदत्त धर्मशास्त्र के अभिज्ञाता थे। प्रसिद्धि है कि कृष्ण का शरीरान्त हो चुका था, किन्तु मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से उनका पुनरुज्जीवन हुआ था। उन्होंने पुनरुज्जीवित देह को पिता के अनुरोध करने पर भी अधिक दिनों तक धारण नहीं किया, त्याग दिया। वेणीदत्त के विवाह के पश्चात् नन्द पण्डित का काशी-लाभ हुआ।

वेणीदत्त के पुत्र का नाम था गोपीनाथ। गोपीनाथ के तीन पुत्र हुए—कृष्ण, दुण्ढिराज और नीलकण्ठ। गोपीनाथ गृहस्थी का त्याग कर साधु के वेष में कनिष्ठ पुत्र नीलकण्ठ के साथ अस्सी के निकट लोलार्कतीर्थ में निवास करते थे। वे श्रीकृष्ण के भक्त थे और विद्वान् भी थे।[2]

विज्ञानभिक्षु का नाम सांख्य-योगशास्त्र में प्रसिद्ध है। विज्ञानभिक्षु और उनके शिष्य इसी शताब्दी में काशी में रहते थे। अध्यापक Garbe ने

१. उज्जैन के सिन्धिया ओरिएण्टल इन्स्टीच्यूट में नन्द पण्डित की श्राद्धकल्पलता की एक प्रति है। उसका लिपिकाल है १६४१ वि० या १५८५ ई०। यह पुस्तक काशी में लिखी गई थी तथा किसी कायस्थ की थी।—ले०

२. द्रष्टव्य : वेणीराम-कृत धर्माधिकारिवंशवर्णन। ये वेणीराम गोपीनाथ के प्रपौत्र थे।—ले०

स्वसम्पादित सांख्यसूत्रवृत्ति की भूमिका (पृ० ७) में तथा सांख्य-योग के इतिहास में इसपर प्रकाश डाला है। विज्ञानभिक्षु शङ्कर-सम्प्रदाय या दशनामी-सम्प्रदाय के साधु नहीं थे। वे उस मत के घोर विरोधी थे। उन्होंने अपने पाषण्डखण्डन नामक ग्रन्थ में शङ्करानुयायी संन्यासियों का 'पाषण्ड' के नाम से उल्लेख किया है। उनके प्रायः सभी ग्रन्थों में शङ्करमत-खण्डन का प्रयत्न दिखाई देता है। उन्होंने शाङ्करमतावलम्बियों का 'वेदान्तिध्रुव' कहकर परिहास किया है। उन्होंने स्वयं भी ब्रह्मसूत्र पर 'विज्ञानामृत' भाष्य की रचना की है। उनकी ग्रन्थमाला दो भागों में विभक्त है—१. सांख्ययोग और २. वेदान्त।

(१) सांख्ययोग में—**क. सांख्यप्रवचनभाष्य** (यह सांख्यसूत्र की विस्तृत व्याख्या है); **ख. सांख्यसार; ग. योगवार्त्तिक;** यह व्यासकृत पातञ्जल योगभाष्य पर व्याख्यान है। इस ग्रन्थ में विभिन्न स्थलों पर वाचस्पतिमिश्र-कृत तत्त्ववैशारदी टीका की समालोचना की गई है। यह सुबृहद् ग्रन्थ अनुपम है। योग-दर्शन के अध्ययन के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है। योगवार्त्तिक में सांख्य-प्रवचनभाष्य का तथा सांख्य-प्रवचनभाष्य में योगवार्त्तिक का उल्लेख है। **घ. योगसारसंग्रह।**

(२) वेदान्त में—**क. ब्रह्मसूत्रभाष्यविज्ञानामृत; ख. ब्रह्मादर्श; ग. पाषण्डमत-खण्डन;**[1] **घ. श्वेताश्वतरोपनिषद्-भाष्य तथा ङ. ईश्वरगीता-टीका।**

विज्ञानभिक्षु के तीन प्रधान शिष्य थे, ऐसा ज्ञात होता है। उन तीनों के नाम हैं—**प्रसादलाघव योगी, भावागणेश दीक्षित** और **दिर्व्यसिंहमिश्र। प्रसादमाधव** ने कारिका-भाष्य अथवा कारिकार्थविनिश्चय नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। उसमें निम्नलिखित श्लोकार्थ का विचार है—

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशीकुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव॥

---

१. ब्रह्मादर्श और पाषण्डमतखण्डन की हस्तलिखित प्रतियाँ स्व० पं० दामोदरलाल गोस्वामी के पुस्तकालय में स्वर्गीय गोपालदासजी के सौजन्य से १९१६ या १७ ई० में हमने देखी थीं। इनमें ग्रन्थकार का नाम विज्ञानाचार्य या विज्ञानभिक्षु कहा गया है। ब्रह्मादर्श की पत्र-संख्या थी २—'१४। योगसारसंग्रह में इस ग्रन्थ का उल्लेख है (द्र० OX. Cat. २३२)। पाषण्डखण्डन की पत्र-संख्या थी १-२०।

पुस्तक के प्रारंभ में लिखा है—

विभज्य लीलया योऽज्ञानेकोऽनेकायते मृषा।
वाचारम्भणमात्रत्वाद् वि···रम्यासि सोऽद्वयः।
वेदान्तैरेव वेदान्ताः सूत्रैः सूत्राणि···वास···।
व्याख्यातान्यधुना तत्र कुर्मः पाषण्डखण्डनम्॥

अन्त में लिखा है—

लेशतोऽयं कृतः पन्था मूढपाषण्डखण्डनम्।
स्वच्छन्दचरणेनायं विपुलीक्रियतां बुधैः॥

इस ग्रन्थ के प्रकरणों के नाम यों दिये गये हैं—परसिद्धान्तोपन्यासः, प्रलयाद्वैते परोक्तप्रकार-खण्डनम्, कार्यकारणयोः पराभिप्रेतात्यन्तासत्ताखण्डनम्, जगत्कारणाविद्यायाः प्रकृतेर्वा चैतन्यधर्मत्व-खण्डनं ज्ञाननाश्यत्वखण्डनं च, पराभिप्रेतखण्डनम्, जीवेश्वरयोर्ब्रह्मप्रतिबिम्बरूपताखण्डनम्, पराभिप्रेततत्त्वमसिवाक्यार्थखण्डनम्, ज्ञानेन सकारणप्रपञ्चबाधखण्डनम्, पराभिमतस्वात्मस्वरूपनित्यानन्दपुरुषार्थत्वखण्डनम्, आधुनिकप्रपञ्चखण्डनानां खण्डनम् आदि।

महीधर के पुस्तक-संग्रह में एक पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर माधवयोगी का नाम लिखा हुआ हमने देखा था। जिन श्लोकों में यह नाम हमारे दृष्टिगोचर हुआ था, उनमें से तीसरा श्लोक यह है—

श्रीमुद्गलो द्विजवरः खलु रामविज्ञोऽनन्ताह्वयः शिवपुरीवसतिङ्करा ये।
ये माधवप्रभृतियोगिवराश्च काश्यां ते मां स्मृताः सकलदुःखहराः प्रपान्तु ॥

यह देवयाज्ञिक-कृत सर्वानुक्रमणी-भाष्य के आवरण-पृष्ठ पर लिखा हुआ है। यह पुस्तक महीधर ने १६३१ वि० या १५७४ ई० में खरीदी थी।

भावागणेश दीक्षित ने '**तत्त्वयाथार्थ्यदीपन**' नाम की तत्त्वसमास-टीका लिखी थी। यह सांख्यदर्शन का ग्रन्थ है। भावागणेश चित्पावन ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम भावाविश्वनाथ और पितामह का नाम भावारामकृष्ण था। तत्त्वयाथार्थ्यदीपन के अतिरिक्त इन्होंने प्रबोधचन्द्रोदय की टीका '**चिच्चन्द्र**' की रचना की थी।[1] इनकी कृति के रूप से एक योगसूत्रवृत्ति भी प्रचलित है।

हॉल (Hall) ने रामाचार्य के पुत्र कृष्णदेव द्वारा विरचित तन्त्रचूडामणि या धर्ममीमांसासंग्रह नाम का एक ग्रन्थ देखा था, जिसके लिपिकर्ता भावागणेश थे। भावागणेश के एक भाई थे, उनका नाम अनन्त था। नारायणभट्ट ने अपने प्रयोग-रत्न में विश्वनाथ दीक्षित के पुत्र अनन्त के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। नारायणभट्ट के समय में भावावंश में विश्वनाथ दीक्षित के अतिरिक्त दूसरे किसी विश्वनाथ का परिचय नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि जिस अनन्त ने नारायणभट्ट की सहायता की थी, वह भावागणेश के छोटे भाई ही थे।

दिर्व्यासंहमिश्र ने प्रसादमाधव-कृत '**शारीरकारिकाभाष्य**' के ऊपर वार्त्तिक-रचना की थी। इनके मत से प्रसादमाधव ही विज्ञानभिक्षु के मुख्य छात्र थे, परन्तु यश भावागणेश का अधिक हुआ था।

इसी १६वीं शती में काशीवासी पण्डितों में महीधर का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध था। महीधर का नामान्तर है महीदास या भूदास। ये नियमतः काशी-निवास करते थे। ये वत्सगोत्रीय अहिच्छत्रीय ब्राह्मण थे। वेद तथा तन्त्रशास्त्र में इनका समान अधिकार था। इनके पिता का नाम फनू या नट्टभट्ट[2] था। ये स्वयं रामभक्त थे। इनके पितामह का नाम रत्नाकर था।

महीधर-कृत ग्रन्थों में शुक्लयजुःसंहिता की (वाजसनेयी) शाखा के भाष्य **वेददीप** का सर्वोच्च स्थान है। इनके ग्रन्थों के नाम हैं : (१) वैदिक ग्रन्थों में—क. **वेददीप**; यह शुक्लयजुःसंहिता पर भाष्य है। ख. **चरणव्यूह-टीका**; रचनाकाल १६१३ वि० या १५५६ ई० अथवा १६६३ वि० या १६०६ ई०। ग. **कात्यायनशुल्ब-सूत्रटीका**; रचनाकाल १६४६ वि० या १५९० ई०। उन्होंने अपने गुरु रत्नेश्वर मिश्र के आदेश से इसकी रचना की थी। रत्नेश्वर मिश्र के पिता का नाम केशव था। घ. **पुरुषसूक्त-टीका**; ङ. **मन्त्रनिघण्टु**; च. **सौत्रामणिविनियोगसूत्रार्थ**; छ. **षडङ्गरुद्रजपटीका**;

१. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, पृ० १५८।

२. विभिन्न स्थलों में इनके विभिन्न नाम मिलते हैं—पूर्णभट्ट, पूर्णभद्र, रामभट्ट, रामदास इत्यादि।

(२) तन्त्रशास्त्र में—क. **मन्त्रमहोदधि** और उसकी **टीका—नौका**; रचनाकाल १६४५ वि० या १५८८ ई० (वर्षे सायकवेदभूपतिमिते)। यह ग्रन्थ उन्होंने अपने पुत्र कल्याण के लिए लिखा था। ख. **मातृकार्णवनिघण्टु**; श्लोक ५६, रचनाकाल १६४५ वि० या १५८८ ई०। यह पुस्तक हमने श्री श्रीकृष्ण जोशी के निकट देखी थी। ग. **नृसिंह पटल**। (३) वेदान्त और पुराण में—क. **योगवासिष्ठसारविवृति**;[1] इसका नामान्तर **योगवासिष्ठप्रकाश** है। रचनाकाल १६५४ वि० या १५९७ ई० है। इसमें १० प्रकरण तथा २२० श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की रचना भी काशी में ही हुई थी—

काश्यां वासिष्ठसारस्य विवृतिर्या मया कृता।
तया ब्रह्मस्वरूपोऽसौ प्रीयतां नरकेसरी॥

ख. **रामगीता-टीका**; रचनाकाल १६६० वि० या १६०३ ई०। (४) वैष्णव-साहित्य में—क. पुरुषोत्तम-कृत **विष्णुभक्तिकल्पलता का विवरण या प्रकाश**; इसका रचनाकाल १६५४ वि० या १५९७ ई० है। पुरुषोत्तम का समय है १४५० ई० या उसके आसपास। (५) ज्यौतिष में—क. **बृहज्जातकटिप्पण**; रचनाकाल १६५५ वि० या १५९८ ई०। ख. **लीलावती-टीकाविवरण**; रचनाकाल १५८७ ई०; ग. **वर्षफलपद्धति**; घ. **ताजिकमणि**; ङ. **मणित्थ**; (६) अन्य विषय—क. **अनादिदीपविवरण**;[2] यह पुस्तक उन्होंने नारायण[3] के अनुरोध से लिखी थी।

महीधर का आदि निवास-स्थान था अहिच्छत्र। यह स्थान बरेली के उत्तर मुरादाबाद जिले में स्थित रामनगर से अभिन्न माना जाता है।

जब हम बनारस संस्कृत-कॉलेज में थे, उस समय संस्कृत-कॉलेज के लिए महीधर और उनके वंशजों का स्वहस्तलिखित पुस्तक-संग्रह खरीदा गया था। उसमें बहुत-सी पुस्तकें महीधर की स्वलिखित थीं, जिनका लिपिकाल १६३० वि० से १६५९ वि० या १५७३ ई० से १६०२ ई० तक था। मन्त्रमहोदधि की पुष्पिका से पता चलता है कि महीधर संसार की असारता का अनुभव करते हुए स्वदेश त्याग कर अन्तिम जीवन व्यतीत करने काशी आये थे। वे जैसे विद्वान् थे, वैसे ही भक्त भी थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों में विश्वेश्वर, गिरिजा, बिन्दुमाधव, मणिकर्णिका, भैरव, दण्डपाणि और गङ्गा इन सबको नमस्कार किया है। संभवतः, वे अपने पुत्र 'कल्याण' को साथ लेकर काशी आये थे। श्री पी० के० गोडे महोदय ने यह दिखलाया है कि संभवतः उनके पूर्वज कम-से-कम ११७० ई० से अहिच्छत्र में निवास करते थे।[4] महीधर ने काशी में रामेश्वर शिव के निकट देहत्याग किया था।

महीधर के पुत्र कल्याण ने आयुर्वेद में बालतन्त्र की रचना की थी। इनके दो पुत्र थे, राम और लक्ष्मण। लक्ष्मण का समय है—१६९८ वि० या १६४१ ई०

१. द्रष्टव्य: India Office Catalogue, पृ० ७८३।
२. इसकी एक प्रति का लिपिकाल है १६७८ वि० या १६२१ ई०।
३. नारायण ब्रह्मोपासक तथा शैव थे। उनके पिता का नाम वहिचर, पितामह का नाम श्रीपल तथा प्रपितामह का नाम विष्णुदास था। वे जाति के स्वर्णकार थे।—ले०
४. द्रष्टव्य: Studies in Indian Literary History, vol. II, पृ० ११७।

महीधर-संग्रह में तीन प्रकार की पुस्तकें देखने में आई हैं, जो उनकी अपनी थीं या उनके लिए लिखी गई थीं अथवा जिनकी प्रतिलिपि महीधर ने स्वयं अपने हाथ से की थी। प्रायः सभी ग्रन्थों में लिपिकाल का उल्लेख है। उससे महीधर का जीवन-काल जानने में सहायता मिलती है।

यथा—१. **नृसिंहपरिचर्या** (पत्र-सं० १–८७, लि० का० सं० १५२५ वि० या १४६८ ई०); इसके लिपिकार थे काशीस्थ हरिव्यासदेव। यह ग्रन्थ 'परमवैष्णवप्रतिष्ठाचार्य' कृष्णदेवविरचित है। उनके पिता का नाम **रामार्य** था। यह **वैष्णवधर्मानुष्ठानपद्धति** के नाम से भी परिचित है। ग्रन्थकार ने नृसिंह की उपासना के विषय में यह ग्रन्थ लिखा था (द्रष्टव्य : इसकी पत्र-सं० ८७ (क))। महीधर ने काशी में अपने पुत्र के अध्ययन के लिए १६४० वि० (नभोवेदाङ्कभूवर्षे) या १५८३ ई० में यह ग्रन्थ खरीदा था। २. **नैषधचरित**; यह ग्रन्थ कन्होजीभट्ट ने महीदासभट्ट को १६३३ वि० (१५७६ ई०) में दान किया था। ३. **पूर्वतापनीयभाष्य शङ्करकृत** (पत्र-सं० १ से ४८); लिपिकाल संवत् १६२६ वि०। इसे महीदास ने संवत् १६४० वि० में खरीदा था। ४. **उत्तरतापनीयभाष्य** (पत्र-सं० १ से ६७); लिपिकाल संवत् १६२७ वि०। महीदास ने संवत् १६४० वि० में इसे खरीदा था। ५. **मन्त्रराजरहस्यदीपिका**; महीदास ने १६४१ वि० में इसकी प्रतिलिपि की थी। ६. **सांख्यकारिका**; १६६८ वि० में महीदास ने इसकी प्रतिलिपि की थी। ७. **प्रक्रियाकौमुदीप्रसाद** विट्ठल-कृत (पत्र-सं० १ से ४३), पूर्ण। महीदास ने संवत् १६३० वि० में इसकी प्रतिलिपि की थी। इस पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर महीदास के पूर्व पुरुषों के विषय में विवरण लिखा गया है। ८. **प्रक्रियाकौमुदीप्रसाद-वैदिकप्रक्रिया**; १६३० वि० में महीदास ने इसकी प्रतिलिपि की थी। ९. **प्रातिशाख्यभाष्य** (पत्र १ से १०९); पूर्ण। महीदास ने १६३१ वि० में इसकी प्रतिलिपि कराई थी। लिपिकार था वाल्मीकिवंशीय शिव। महीदास ने 'विश्वनाथपुरी-भूमिकिङ्कर' के रूप में अपना परिचय दिया है। १०. **कात्यायनप्रातिशाख्य** (पत्र १ से १४ तक); इसकी प्रतिलिपि महीदास ने काशी में सं० १६३१ वि० में की थी। ११. **सर्वानुक्रमणीभाष्य** देवयाज्ञिक-कृत (पत्र-सं० १ से १४३।)। ये देवयाज्ञिक प्रजापति के पुत्र थे। इस पुस्तक का लिपिकाल १६१९ वि० है। (द्रष्टव्य : पत्र २०—**स्वस्ति श्रीमत् संवत् १६१९ वर्षे चैत्रवदि १० दिने काश्यां लेखकेन अलेखि इदम् अनुक्रमणीभाष्यम्। श्री।**) महीदास ने १६३१ वि० में यह पुस्तक खरीदी थी—

संवत् १६३१ वर्षे[1] कार्त्तिक वदि ५ भौमे
महीदासोऽलिखत्काश्यां स्वपाठाय मुदा युतः।
अनुक्रमणिकाभाष्ये यन्न्यूनमभवत् किल॥ (पत्र—सं० १४३)

---

१. भूरामाङ्कधरामितेब्द इषमासेऽन्त्ये दले वह्न्यहे
वारेऽर्कस्य च नीलकण्ठनगरे भूदासनामा पठन्
सर्पच्छत्रधरामरान्वयभवो विद्वत्फनून्नन्दनो-
ऽक्रीणात्स्वीयकृते नृसिंहभजनेऽनुक्रान्तिभाष्यं रतः॥

महीधर के पौत्र लक्ष्मण के पुत्र का नाम वीरेश्वर था। वीरेश्वर का पुत्र था वेणीदत्त। वेणीदत्त ने १७०८ ई० में भानुदत्त-कृत रसतरङ्गिणी पर **'रसिक-मञ्जरी'** टीका[1] की रचना की थी।

१६वीं शती में काशीवासी बंगाली पण्डितों में प्रधान थे **नरहरि विशारद**। ये नवद्वीप से काशी आये थे। इनके पुत्र **वासुदेव सार्वभौम** तथा **विद्यावाचस्पति** का वृत्तान्त पहले कहा जा चुका है। यवनों के उत्पीड़न के समय वासुदेव नवद्वीप छोड़कर पुरीधाम चले गये थे। विद्यावाचस्पति संभवतः गौड में ही रह गये थे। विद्यावाचस्पति के पुत्र **विद्यानिवास भट्टाचार्य** काशी आये थे। १६वीं शती में काशी के विद्वत्समाज में उनकी अतुलनीय प्रतिष्ठा थी। दिल्ली-सम्राट् के दरबार में भी उनका असाधारण सम्मान था। प्रसिद्धि है कि वे दिल्ली, टोडरमल के घर, श्राद्ध में निमन्त्रित होकर गये थे। काशी के सुप्रसिद्ध पण्डित **नारायण** भी उस सभा में उपस्थित थे।

विद्यानिवास बहुत बड़े नैयायिक थे, परन्तु उन्होंने इस विषय में कोई ग्रन्थ लिखा या नहीं, इसका पता नहीं चलता। उनके नाम से प्रचलित पुस्तकों में **दोलारोहणपद्धति, सच्चरितमानसकाव्य**[2] और **मुग्धबोध की टीका**[3] ज्ञात हैं। इनके अतिरिक्त **द्वादशयात्राप्रयोगप्रकरण** नाम की एक और पुस्तक इनकी लिखी है, ऐसा प्रतीत होता है।[4] इस ग्रन्थ में जगन्नाथ की १२ यात्राओं का वर्णन है। इन यात्राओं के नाम हैं—गुण्डीचा, पार्श्व-परिवर्तन, उत्थान, प्रावरणोत्सव, पुष्याभिषेक, नवसस्योत्सव, दोलयात्रा, मदनभञ्जन, चन्दनयात्रा, अक्षयतृतीया इत्यादि। इस पुस्तक में 'प्रयोगपद्धति' का भी उल्लेख है। पूर्वोक्त 'दोलारोहण-पद्धति' इस ग्रन्थ का अंशविशेष है या स्वतन्त्र ग्रन्थ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

विद्यानिवास के पुत्र **विश्वनाथ सिद्धान्तपञ्चानन** और **रुद्र न्यायवाचस्पति** प्रसिद्ध पण्डित थे। विश्वनाथ भाषापरिच्छेदकारिका और न्यायमुक्तावली के रचयिता थे, ऐसी प्रसिद्धि है। परन्तु, किसी-किसी का कथन है कि यह ग्रन्थ विश्वनाथ की रचना नहीं है।

विश्वनाथ के ग्रन्थों के नाम : (१) न्यायवैशेषिक में—क. **न्यायसूत्रवृत्ति;** इसका रचनाकाल शकाब्द १५५६, अर्थात् १६३४ ई० है। यह पुस्तक वृन्दावन में लिखी गई थी। ख. **न्यायालोक;** यह उनके अपने दृष्टिकोण से न्यायसूत्र की व्याख्या है। ग. **पदार्थतत्त्वावलोक** (द्रष्टव्य : India office Catalogue पृ० ६७१); घ. **आख्यातवाद-टीका;** ङ. **नञ्वादटीका;** इसकी एक प्रति सं० १७०९ वि० या १६५२

---

१. द्रष्टव्य : 'वेणीदत्तशर्मा और उसकी रसिकमञ्जरी' नामक लेख, अध्यापक देवस्थली-लिखित, New Indian Antiquary, Vol. V. 1942-43, पृ० १९३–२०० तथा द्रष्टव्य : राघवन्-कृत 'प्राथमिक वेदसंग्रह' की भूमिका, पृ० ६ से १३।

२. द्रष्टव्य : Oxford Catalogue, पृ० ३८६।

३. यह दुर्गादास विद्यावागीश के मुग्धबोध की टीका सुबोधा में उल्लिखित है—India office Catalogue, पृ० २३०।

४. द्रष्टव्य : Asiatic Society of Bengal Catalogue, २४२९।

ई० में लिखी गई थी। च. **सुबर्थतत्त्वालोक;** छ. **न्यायतन्त्रबोधिनी**। (२) प्राकृत में—**प्राकृतपिङ्गलटीका**। (३) काव्य में—**सूक्तिमुक्तावली; १२२ श्लोक**। (४) विविध—**क. भेदसिद्धि तथा ख. मांसतत्त्वविवेक**।

दिनेश बाबू ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि भाषापरिच्छेदमुक्तावली विश्वनाथ की रचना नहीं है; परन्तु कृष्णदास सार्वभौम की रचना है।[1]

विश्वनाथ के पुत्र का नाम था रामदेव भट्टाचार्य (द्रष्टव्य : कवीन्द्रचन्द्रोदय, पृ० ४ से ५)। सन् १६६९ ई० में जब औरंगजेब ने विश्वनाथ का मन्दिर ध्वस्त किया था, तब रामदेव काशी का त्याग कर पूर्व बंगाल के ढाका जिले के विक्रमपुर के अन्तर्गत पश्चिमपाड़ा ग्राम में चले गये। वहाँ उनके वंशधर इस समय भी उनके भूमिखण्ड का उपभोग कर रहे हैं। विश्वनाथ (काशीवासी) की कन्या के साथ खडदहमेल के कुलीन रुद्र चक्रवर्ती का विवाह हुआ था, जिसका पता कुलपञ्जिका से चलता है।[2]

विश्वनाथ के ज्येष्ठ भ्राता **रुद्र न्यायवाचस्पति** ने भी बहुत-से ग्रन्थों का निर्माण कर कीर्त्ति उपार्जित की थी। रुद्र अम्बरराज भावसिंह के अत्यन्त प्रीतिपात्र थे। वे कवि भी थे और दार्शनिक भी। उनके लिखे काव्यों में तीन काव्य उल्लेख्य हैं—क. '**भावविलास**'[3] इसमें भावसिंह का जीवनवृत्त वर्णित है। यह उन्हीं के अनुरोध से रचा गया था। ख. '**भ्रमरदूत**' यह मन्दाक्रान्ता छन्द में मेघदूत के अनुकरण पर रचा गया है और ग. '**वृन्दावनविनोद**' इसमें श्रीकृष्ण की वृन्दावन में की गई बाल्य-लीलाओं का वर्णन है।

न्यायवैशेषिक में उन्होंने बहुत-से ग्रन्थों की रचना की थी। उनके अधिकांश ग्रन्थ प्रायः टीकारूप ही हैं—क. **कुसुमाञ्जलिकारिका पर टीका** (द्रष्टव्य : Hall पृ० ८४); ख. गङ्गेश-कृत **तत्त्वचिन्तामणि की टीका**; ग. रघुनाथशिरोमणि-कृत **चिन्तामणिदीधिति पर टिप्पणी;**[4]; घ. रघुनाथ-कृत **लीलावतीदीधिति पर टीका;** ङ. रघुनाथ-कृत **बौद्धाधिकारदीधिति पर टीका;** च. रघुनाथ-कृत **किरणावली-प्रकाशविवृत्ति** पर टीका—**भावप्रकाशिका (द्रव्य)**[5]; छ. **पदार्थतत्त्वनिरूपण की टीका**;

१. द्रष्टव्य : बंगे नव्यन्यायचर्चा, पृ० ११७—१२०।

२. द्रष्टव्य : वही, पृ० २७७।

३. भावविलास, श्लोक १३५, Bhandarkar List of Sanskrit Manuscripts in the Private Libraries of Bombay Presidency, Part. I, नं० २५५, पृ० १३०। भण्डारकर की पुस्तक में, प्रारम्भ में इस भावविलास के कर्ता का नाम दिया गया है 'चन्द्रचूड' तथा अन्त (श्लोक सं० १३६ और १३७) में रुद्र न्यायवाचस्पति कर्ता कहे गये हैं। संभवतः, पुस्तक का प्रथम अंश कोई दूसरी पुस्तक हो, भ्रमवश भावविलास से संबद्ध हो गई हो अथवा 'चन्द्रचूड' रुद्रवाचक होने से रुद्र न्यायवाचस्पति के लिए प्रयुक्त हुआ हो।—ले०

४. रुद्रकृत पदार्थतत्त्वनिरूपण टीका में इसका उल्लेख है। इसकी एक प्रति बनारस संस्कृत-कॉलेज में थी (द्रष्टव्य : Hall, पृ० ३४)। इस पुस्तक का लिपिकाल १६७० वि० या १६१३ ई० था।—ले०

५. बनारस संस्कृत-कॉलेज में इसके गुणांश की टीका है (द्रष्टव्य : Hall, पृ० ६६)। यह टीका रघुनाथशिरोमणि की प्रकाशविवृति पर है।—ले०

ज. **चित्ररूपवादार्थ** (द्रष्टव्य : Hall, पृ० ४६); झ. **वादपदार्थ** (द्रष्टव्य : Hall पृ० ४६); ञ. **आख्यातवादटीका** और ट. **नञ्वादटीका**।

रुद्र-के एकमात्र पुत्र और छात्र थे—गोविन्द भट्टाचार्य। इनकी कृतियाँ—१. **न्यायरहस्य या न्यायसंक्षेप**; १७२ कारिकाओं का ग्रन्थ। रचनाकाल १५५० शकाब्द या १६२८ ई०। गोविन्द ने १६५७ ई० में काशी के एक निर्णयपत्र (व्यवस्था-पत्र) पर हस्ताक्षर किये थे।[1] २. **पद्यमुक्तावली**; १०० श्लोक। यह आसफ खां की प्रशस्ति है। आसफ खां शाहजहाँ के प्रधान मन्त्री थे।

भवानन्द सिद्धान्तवागीश १६वीं शती के शेष भाग में निवास के लिए नवद्वीप से काशी आये, ऐसा मालूम होता है। परन्तु, कब आये, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। काशी आने के पश्चात् वे यहाँ अध्यापन भी करते रहे।

पाटली नामक ग्राम के पण्डित **देवीदास विद्याभूषण** अपने पिता से बहुत ग्रन्थों का अध्ययन करने के अनन्तर न्यायादि शास्त्रों में व्युत्पत्ति प्राप्त करने के लिए काशी आये थे और यहाँ आकर भवानन्द के शिष्य हुए थे। भवानन्द उनके साथ शास्त्रार्थ-विषयक वार्तालाप से प्रसन्न होकर ऐसी आशा प्रकट करते थे कि यह भविष्य में पण्डित-समाज में अति उच्च स्थान प्राप्त करेगा। देवीदास भवानन्द के साथ ही काशी आये या कुछ काल के अनन्तर आये, यह ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। अध्ययन के अनन्तर विद्याभूषण काशी में विभिन्न शास्त्रों का अध्यापन करते थे—

आहूय पितरौ नारीं समानीय प्रयत्नतः।
वाराणसीमाश्रितवान् विद्याभूषणनामकः॥
अध्यापयामास चिरं सर्वशास्त्राणि तत्र वै।

यह विवरण देवीदास के पर-प्रपौत्र (प्रपौत्र-पुत्र) **कृष्णकान्त विद्यावागीश** ने तर्कामृततरंगिणी में दिया है। देवीदास 'सर्वशास्त्रविशारद' थे, यह बात उस समय की इस प्रसिद्धि से भी ज्ञात होती है—**'पाटल्यां भूषणद्वयम्'**।

भवानन्द का आदि निवास था भुलुवा अथवा नोआखाली। उसके बाद उनका निवास-स्थान हुआ नवद्वीप। नवद्वीप से ही वे काशी आये।

भवानन्द के दूसरे छात्र थे **राघवेन्द्र भट्टाचार्य शतावधान**।[2] वे चिरंजीव भट्टाचार्य के पिता थे। उनका मूलस्थान था—वंगदेश-स्थित 'गुप्तिपाड़ा' नाम का ग्राम। राघवेन्द्र पहले नवद्वीप में अध्यापन करते थे। उसके पश्चात् काशी आये।

राघवेन्द्र के पुत्र चिरंजीव भट्टाचार्य का जन्म नवद्वीप में ही हुआ था। उसके

१. द्रष्टव्य : चिंतलेभट्ट-प्रकरण, पृ० ७९; Indian Historical Quarterly, Vol. XXI, पृ० ९१—९९।

२. द्रष्टव्य : दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य-लिखित प्रबन्ध Indian Historical Quarterly, Vol. XVI पृ० १-१०; तथा प्रवासी, कार्त्तिक, १३५५ वंगाब्द, पृ० ६४—९७।

बाद वहाँ से आकर दीर्घ कल तक वे काशी में ही रहे। माधवचम्पू के अन्त में लिखा है–

वाग्देवीवदनादनादिरचनाविन्यासदीव्यन्नव-
द्वीपप्रान्तजनेरनेकदिवसं वाराणसीवासिनः।
विद्यासागरजागरोन्नतमतेर्भाव्या ममैषा कृतिः
विद्वद्भिः कृपया कयापि सहसा मात्सर्यमुत्सृज्य तैः॥

चिरंजीव नव्यन्याय में रघुदेव न्यायालङ्कार के छात्र थे। इन दोनों पिता-पुत्रों ने मध्यभारत में लाहाइड़ राजसभा में बहुत-से ग्रन्थों का निर्माण किया था और विपुल कीर्ति भी उपार्जित की थी।[1] चिरंजीव ने अपने काव्यविलास में रघुदेव का नामोल्लेख किया है।

भवानन्द के ग्रन्थों के नाम––क. **चिन्तामणिदीधिति की टीका**; यह इनकी सर्वप्रसिद्ध कृति है। नवद्वीप में इस ग्रन्थ के अनुमानखण्ड की विशेष ख्याति थी। बाद, जागदीशी और गादाधरी ने इसके स्थान पर अधिकार किया। भवानन्दी का सम्मान नवद्वीप में कम होने पर भी काशी में अधिक था। १७वीं शती के **महादेव पुणताम्बेकर** ने इसी के ऊपर भवानन्दीप्रकाश (बृहत्) और सर्वोपकारिणी (लघु) टीका की रचना की थी। महादेव ने कहा है—गौडस्थ पण्डित लोग असूया-वश भवानन्द की व्याख्या की भली भाँति आलोचना नहीं कर सके, इसीलिए उन्होंने उसपर दोषाभास प्रकट किये थे। महादेव ने उक्त दोषों का उद्धार किया है। ख. **किरणावलीगुणप्रकाशदीधिति की टीका**; ग. **लीलावती-शिरोमणि की टीका**; घ. **चिन्तामण्यालोकसारमञ्जरी (उपमानखण्ड छोड़कर)** तथा ङ. **शब्दार्थसारमञ्जरी**; इसमें विभिन्न प्रकरण हैं।

चिरंजीव के ग्रन्थ हैं––क. **काव्यविलास**; ख. **विद्वन्मोदतरङ्गिणी**; ग. **वृत्तरत्नावली**। अन्तिम पुस्तक गौड के राजा जसवन्तसिंह के लिए लिखी गई थी तथा घ. **माधवचम्पू**; इसका उन्होंने अल्प वय में प्रणयन किया था।

इसी शती में काशीवासी वंगीय पण्डितों में जगद्गुरु महामहोपाध्याय भट्टाचार्य रामकृष्ण चक्रवर्ती का नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है। किसी-किसी का मत है कि वे दीधितिकार रघुनाथशिरोमणि के साक्षात् शिष्य थे (वंगे नव्यन्यायचर्चा, पृ० २७०)। दिनेश बाबू का अनुमान है कि ये आइने-अकबरी में संकेतित तार्किकों के मध्य में उल्लिखित तार्किक रामकृष्ण से अभिन्न हैं। इनके द्वारा निर्मित ग्रन्थ–– क. **चिन्तामणिदीधितिटीका** प्रत्यक्ष और अनुमान खण्ड पर है। संभवतः, यह टीका काशी में ही लिखी गई थी। प्रत्यक्षखण्ड के मङ्गलाचरण में उन्होंने लिखा है––

शरणीकृतविश्वेशचरणोऽवनतो गुरून्।
श्रीरामकृष्णो व्याचष्टे प्रत्यक्षमणिदीधितिम्॥

ख. **गुणदीधिप्रकाश**; ग. **लीलावतीधितिटीका**; घ. **पदार्थखण्डनटीका** तथा ङ. **आत्मतत्त्वविवेकदीधित-टीका**।

---

१. द्रष्टव्य : Indian Historical Quarterly Vol. 16, पृ० १ से १०; प्रवासी, कार्तिक, १३५५: पृ० ६४—६९ तथा वंगे नव्यन्यायचर्चा, पृ० २८०।

प्रसिद्धि है कि मिथिला के **महेश ठक्कुर** ने काशी में आकर वेदान्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया था। वे दरभङ्गा-राजवंश के मूल पुरुष थे। कामेश के राजवंश के अनन्तर इस वंश का उत्थान हुआ। महेश ठक्कुर को दरभङ्गा राज्य दान-रूप में प्राप्त हुआ था। उनके दानपत्र में शेरशाह तथा अकबर बादशाह के हस्ताक्षर हैं। उन्होंने रघुनाथशिरोमणि को जो पत्र लिखा था, वह वैवस्वतसिद्धान्त की पुस्तक में अङ्कित है, विशेषज्ञों का इस विषय में यही मत है। यह पुस्तक १५८६ वि० या १५२९ ई० में नवद्वीप में लिखी गई थी। महेश ठक्कुर बहुत बड़े नैयायिक थे। उन्होंने तत्त्वचिन्तामणि की पक्षधरमिश्र-विरचित टीका 'आलोक' के ऊपर 'दर्पण' नामक एक टीका लिखी थी। वह संभवतः काशी रहते समय **नारायण भट्ट** के पिता **रामेश्वरभट्ट** से वेदान्त का अध्ययन करते थे। वे नैयायिक होने पर भी वेदान्त के प्रति श्रद्धालु थे। अनुमानखण्ड के दर्पण में एक स्थल पर वेदान्त का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है कि मैंने वेदान्त-मत का परिचय-मात्र दिया है, खण्डन नहीं किया; क्योंकि उस मत का सम्मान श्रुति, स्मृति, पुराण तथा शिष्टजनों द्वारा हुआ है—**तदेवं संक्षेपेण वेदान्तमतं लिखितं न दूषितम्, श्रुतिस्मृतिपुराणशिष्टानुशिष्टत्वात्।**

इसी समय **रघुपति उपाध्याय** नामक एक दूसरे नैयायिक मैथिल पण्डित काशी-निवास करते थे।

इस शती के मध्य में एक प्रसिद्ध मीमांसक काशी में रहते थे। उनका नाम था **रामकृष्ण**। रामकृष्ण के पिता का नाम माधवभट्ट और माता का प्रभावती था। माधव के पिता का नाम नारायण था। नारायण के पिता का नाम भैरव और माता का नाम पुनादेवी था। भैरव के माता-पिता थे गङ्गादेवी तथा जनार्दन। जनार्दन के पिता का नाम था मित्रशर्मा और मित्रशर्मा के पिता का नाम था शिवदास। रामकृष्ण पराशरगोत्रीय मालव-ब्राह्मण थे। मालव-ब्राह्मणों के मूल पुरुष थे—पराशर, वसिष्ठ, वत्स, कुत्स, शाण्डिल्य, भृगु और गौतम। उन्होंने १६०० वि० या १५४३ ई० में पार्थसारथिमिश्र-कृत शास्त्रदीपिका पर 'युक्तिस्नेहप्रपूरणी' नाम की एक टीका लिखी थी। रामकृष्ण काशी-निवासी थे। उनके पिता माधव अपनी माता को साथ लेकर अध्ययन के लिए काशी आये थे। काशी में निवास करते समय राजराज से उन्हें भट्ट उपाधि प्राप्त हुई थी एवं गजपति-वंश के राजगुरु बलभद्र ने **प्रतापमार्तण्ड** ग्रन्थ की रचना करने के कारण उन्हें राजसभा में 'पण्डितशिरोमणि' की उपाधि प्रदान की थी। क्या ये गजपति-राज उत्कल के राजा प्रतापादित्य तो नहीं थे? (द्रष्टव्य : Hall पृ० १२३।)

इस समय काशी में प्रसिद्ध महाराष्ट्र सन्त-कवि एकनाथजी भी निवास करते थे। उनका जन्म-समय शकाब्द १४५६ अथवा १५३४ ई० है। डॉ० राणाडे का मत है कि उनके पूर्वपुरुष **भानुदास**[1] उनसे लगभग १०० वर्ष पहले विद्यमान

१. वंशक्रम यों है—भानुदास से चक्रपाणि, चक्रपाणि से सूर्यनारायण (पत्नी रुक्मिणी), सूर्य-नारायण से एकनाथ हुए।—ले०

थे। वे विट्ठल-भक्त थे। यवनों के भय से विजयनगर के राजा कृष्णराज पण्ढरपुर से विट्ठल की मूर्ति हटाकर अपने राज्य में ले गये थे। उसके बाद भानुदास के प्रभाव से उन्होंने उसे पंढरपुर को लौटा दिया। विजयनगर में अभीतक विजय-विट्ठल का मन्दिर विद्यमान है। एकनाथ या भानुदास के वंशजों की विट्ठल के प्रति भक्ति परम्परा से प्रसिद्ध है। विट्ठल श्रीकृष्ण का ही नामान्तर है। भानुदास के पदों में उनकी बाल-लीला तथा गोचारण-लीला का वर्णन है।

एकनाथ का उपनयन छह वर्ष की अवस्था में हुआ था। बारह वर्ष की अवस्था में दीक्षा के लिए गुरु-ग्रहण की इच्छा से वे देवगढ़ गये एवं वहाँ जनार्दनस्वामी से उन्होंने दीक्षा ली। उसी स्थान में छह वर्ष रहकर उन्होंने ज्ञानेश्वर-कृत गीता-टीका **ज्ञानेश्वरी** तथा ज्ञानेश्वर के **अमृतानुभव** का अध्ययन किया। तदुपरान्त वे तीर्थयात्रा के लिए निकले। उसी प्रसङ्ग में काशीधाम भी आये। यह सन् १५५१ ई० के आसपास की घटना है। काशी में उन्होंने हिन्दी तथा फारसी भाषा का ज्ञानार्जन किया। उन्होंने दीर्घकाल तक काशी-निवास किया। तदुपरान्त, तीर्थयात्रा से लौटकर गुरु की आज्ञा से जन्मस्थान पैठन गये और गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। उन्होंने १५२१ शकाब्द या १५९९ ई० में ६५ वर्ष की अवस्था में गोदावरी-तट पर जाकर संन्यास लिया एवं तदनन्तर, पूर्ण आध्यात्मिक भाव से जीवन व्यतीत किया।[1] उनके रचित ग्रन्थों के नाम—क. **चतुःश्लोकी भागवत**; ख. **श्रीमद्भागवत एकादशस्कन्ध की मराठी टीका**; इसकी रचना पैठन (प्रतिष्ठान-पुर) में आरम्भ हुई तथा समाप्ति १४९५ शकाब्द या १६३० वि०, अर्थात् १५७३ ई० में काशी में हुई। ग. **रुक्मिणीस्वयंवररूपक** (मराठी); घ. **भावार्थ-रामायण**; ङ. **प्रह्लादचरित**; च. **शुकाष्टक**; छ. **स्वात्मसुख**।

एकनाथ ने १५०६ शकाब्द या १५८४ ई० में ज्ञानेश्वरी का जीर्णोद्धार किया था। पूर्ववर्णित महीधर ग्रन्थ-संग्रह के अन्तर्गत किसी एक पुस्तक में लिखा है कि १६५७ वि० या १५७४ ई० में काशी में जितने विद्वान् पण्डित थे, उनमें से इन लोगों के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं—महीधर, भानुदीक्षित, नारायण, कमलाकर, श्रीकृष्णपण्डित, पुरुषोत्तमदेव, गोपी, माधव (वेदाङ्गवित्), **एकनाथ**, वामन, वासुदेव, सोमेश्वर, भानुदेव उपाध्याय, विश्वनाथ, मुद्गल, राम (उपाध्याय), माधवयोगी आदि (द्रष्टव्य पृ० २२)।

आपदेव (प्रथम) एकनाथ-वंश में उद्भूत और महामहोपाध्याय थे। इनके पुत्र थे अनन्तदेव (प्रथम)। ये परमभक्त थे। इन्होंने **भक्तिविवेक, मनोनुरञ्जन** नामक हरिभक्ति-नाटक (५ अंक) अथवा **कृष्णभक्ति-चन्द्रिका** की रचना की थी। **भक्तिकल्पलता** किसकी है? क्या यह आपदेव (प्रथम)-कृत है?

अनन्तदेव के गुरु थे—उनके पिता, **नारायणभट्ट** तथा **रामतीर्थ**।

१६वीं शती में काशी में जितने संन्यासी पण्डित विद्यमान थे, उनमें नृसिंहाश्रम, **मधुसूदनसरस्वती**, रामतीर्थ, नृसिंहसरस्वती, प्रकाशानन्द आदि के नाम उल्लेख-

१. मतान्तर से उनका समय १४७० से १५३१ शकाब्द अथवा १५४८ से १६०९ ई० है।—ले०

योग्य हैं। इनमें से किन्हीं-किन्हीं के शिष्यों ने भी प्रधानता प्राप्त की थी। इन शिष्यों में संन्यासी भी थे और गृहस्थ भी। सुना जाता है कि उस युग में **उपेन्द्राश्रम** नामक एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थी संन्यासी थे। उन्होंने नारायणभट्ट के साथ शास्त्रार्थ-विचार किया था। किंवदन्ती ऐसी है कि उस समय शुद्धाद्वैत वैष्णव-सम्प्रदायाचार्य वल्लभ ने भी काशी में अद्वैतियों के साथ छह महीने तक सभा में शास्त्रार्थ-विचार किया था। कहा जाता है कि उपेन्द्राश्रम ने व्यक्तिगत प्रभाव से इस विरोध को मिटा दिया था। यह भी किसी-किसी का मत है कि विरोधी-पक्ष के किसी व्यक्ति ने वल्लभाचार्य की हत्या करने का प्रयत्न किया था। इसका पता चलने पर वल्लभाचार्य काशी त्याग कर चुनार चले गये थे और फिर वे वहाँ से मथुरा चले गये। परन्तु, यह कहाँतक प्रामाणिक है, कहा नहीं जा सकता।

नृसिंहाश्रम ने अपने ग्रन्थ में 'वेदान्तसिद्धान्तसाराभिज्ञ' कहकर अपना उल्लेख किया है। उनका नाम वेदान्त के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में सदा अंकित रहेगा। वे वेदान्तपरिभाषाकार धर्मराजाध्वरीन्द्र के परम गुरु थे। धर्मराज के गुरु वेलांगुडी-निवासी **वेङ्कटनाथ** थे। परन्तु, नृसिंह काशी में ही निवास करते थे। वे पहले नर्मदातट पर रहते थे। उनके गुरु थे परमहंस परिव्राजकाचार्य **जगन्नाथाश्रम**[1] तथा **गीर्वाणेन्द्र सरस्वती**।[2]

नृसिंह-रचित ग्रन्थों के नाम—क. **भावप्रकाशिका**; यह प्रकाशात्मदेव-कृत पञ्चपादिका-विवरण की टीका है। ख. **वेदान्ततत्त्वविवेक** और उसकी टीका **दीपन**; इस ग्रन्थ में दो परिच्छेद हैं। मूल ग्रन्थ १६०४ वि० (वेदवियद्रसेन्दुगुणिते) अथवा १५४७ ई० में समाप्त हुआ। टीका उसके अगले वर्ष में समाप्त हुई। इस टीका का नामान्तर **अद्वैतरत्नकोष** भी कहीं-कहीं पर देखा जाता है। इसकी रचना पुरुषोत्तमपुर में हुई थी। Hall (पृ० १५६) प्रमाद से इस टीका को नृसिंहशिष्य-विरचित कहते हैं। 'दीपन' के ऊपर भट्टोजिदीक्षित की भी एक टीका है। उसका नाम वाक्यमाला या दीपनव्याख्या अथवा तत्त्वविवेकटीका-विवरण है। पण्डित अग्निहोत्र शास्त्री ने भी 'अद्वैतरत्नकोषपूरणी' नाम की एक व्याख्या इसपर लिखी थी। अग्निहोत्र स्वामी के पिता का नाम था—**द्वादशाहेज्वा**। **द्वादशाहेज्वा** ज्ञानेन्द्रसरस्वती के शिष्य थे (द्रष्टव्य : प्रपूरणी की पुष्पिका)। ग. **तत्त्वदीपन**; यह मल्लनाराध्य-कृत अभेदरत्न की टीका है। यह अभेदरत्न शङ्करमिश्र कृत भेदरत्न का प्रतिवाद है।

---

१. रामचन्द्राचार्य के पौत्र प्रसाद के रचयिता विट्ठल ने प्रसाद के अन्त में श्रद्धा के साथ जगन्नाथ का नामोल्लेख और वन्दना की है—'जगन्नाथाश्रमं वन्दे यतिं वेदान्तकोविदम्'। डॉ० राघवन् के मतानुसार जगन्नाथ का समय १५०० ई० है। द्रष्टव्य : Adyar Library Bulletin, Vol. I, February, 1937, पृ० ४६।

२. कल्याणगुणसम्पूर्णं निर्वाणविभवालयम्।
गीर्वाणेन्द्रसरस्वत्या : (पावनं) चरणं भजे॥
—अद्वैतदीपिका, मङ्गलाचरण-श्लोक ४।

भेदरत्न में, प्रारम्भ में लिखा है—

भेदरत्नपरित्राणे तार्किका एव यामिकाः।
अतो वेदान्तिनः स्तेनान् निरस्यत्येष शङ्करः॥

अभेदरत्न में लिखा है—

अद्वैतरत्नरक्षायां तात्त्विका एव यामिकाः।
अतो नयविदः स्तेनान् निरस्यामि सयुक्तिकम्॥

घ. **अद्वैतदीपिका**; यह चार परिच्छेदों में पूर्ण है। इसकी रचना नृसिंह ने अपने गुरु की आज्ञा से की थी। इसमें मध्वग्रन्थ न्यायामृत के खण्डन की चेष्टा भी की गई है। (द्रष्टव्य : परिच्छेद २, पृ० ३-५, ७, ६, १५, १६ और १७; बनारस मेडिकल हॉल प्रेस-संस्करण १६१८।) अद्वैतदीपिका का खण्डन वेणीदत्त ने अपने **भेदजयश्री** ग्रन्थ में किया है। ङ. **भेदधिक्कार**; यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका भी प्रत्युत्तर वेणीदत्त-कृत भेदजयश्री में है। च. **तत्त्वबोधिनी**, यह संक्षेपशारीरक की टीका है। छ. **वैदिकसिद्धान्तसंग्रह**; इस ग्रन्थ में त्रिदेवों—ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर—के ऐक्य का प्रदर्शन किया गया है। ज. **वेदान्तरत्नकोष**; यह पञ्चपादिका की टीका है (द्रष्टव्य : तंजोर-कैटलाग, नं० ७०६५-६६)। इस पुस्तक की पुष्पिका में कहा गया है कि यह जगन्नाथाश्रम के शिष्य नृसिंहाश्रम का बनाया हुआ है। परन्तु, मङ्गलाचरण के दो (२रा और ३रा) श्लोक देखने से प्रतीत होता है कि यह नृसिंहाश्रम के शिष्य का बनाया हुआ है। झ **अद्वैतब्रह्मानुसन्धान**; ञ. **नृसिंह-विज्ञापन**[1]; (द्रष्टव्य : सूर्यनारायण शुक्ल-प्रकाशित ग्रन्थ की भूमिका।)

नृसिंहाश्रम के उपास्य नृसिंहदेव थे, जो नीलाचल में आविर्भूत हुए थे। नीलाचल यदि काञ्ची से २० कोस दूर सिंहाचल हो, तो नृसिंह पूर्वाश्रम में संभवतः वहीं वास करते थे, यह कल्पना संगत होती है। नृसिंहाश्रम के उपास्य के विषय में भावप्रकाशिका के अन्त में, वेदान्तरत्नकोष में तथा तत्त्वबोधिनी के आदि और अन्त में लिखा गया है।

प्रसिद्धि है कि नृसिंहाश्रम के प्रभाव से अप्पय्यदीक्षित ने शैवमत त्याग कर अद्वैतवेदान्त का मत ग्रहण किया था एवं उसमें ग्रन्थ-रचना की थी। नृसिंहाश्रम के प्रति अप्पय्यदीक्षित की असीम श्रद्धा थी। उन्होंने सिद्धान्तलेशसंग्रह में स्थल-स्थल पर नृसिंह का तथा उनके रचित तत्त्वविवेक और अद्वैतदीपिका का श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया है।

भारत के नाना स्थानों[2] में नृसिंह के बहुत शिष्य थे। उनमें कोई संन्यासी

१. कोई-कोई शङ्का करते हैं कि यह ग्रन्थ प्रसिद्ध नृसिंहाश्रम-कृत है या नहीं? किन्तु अन्त में ऐसा श्लोक दिखाई देता है—नृसिंहविज्ञापनमेतदित्थं नृसिंहनाम्ना यतिना व्यधायि।
नृसिंहशेषात्मजरामचन्द्रसम्प्रार्थनावर्जितमानसेन॥ (श्लोक २४३)
इसलिए इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

२. वेदान्तपरिभाषा के मङ्गलाचरण (द्वितीय श्लोक) में धर्मराज ने कहा है—
यदन्तेवासिपक्षास्यैर्निरस्ता भेदिवारणाः।
तं प्रणौमि नृसिंहाख्यं यतीन्द्रं परमं गुरुम्॥
इससे पता चलता है कि नृसिंहाश्रम के बहुत शिष्य थे।

थे, तो कोई गृहस्थ थे। उनमें से इन व्यक्तियों का पता चलता है—१. तत्त्व-चन्द्रिकाकार, २. धर्मराज के गुरु वेङ्कटनाथ, ३. रंगोजिभट्ट, ४. भट्टोजिदीक्षित, ५. अप्पय्यदीक्षित, ६. नारायणाश्रम और ७. शेष रामचन्द्र[1]। वेदान्त-सिद्धान्त-मुक्तावलीकार प्रकाशानन्द के शिष्य **नानादीक्षित** नृसिंह का अपने गुरु के तुल्य सम्मान करते थे। वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली की टीका के मङ्गलाचरण में **'सद्गुरुः श्रीनृसिंहः'** के रूप में उनका उल्लेख दिखाई देता है।

नृसिंह के शिष्य **नारायण** ने इन ग्रन्थों की रचना की थी—क. **भेदधिक्कार-टीका—सत्क्रिया;** इसपर शुद्धानन्द ने उज्ज्वला नाम की एक टीका लिखी थी। ख. **अद्वैतदीपिका-टीका—विवरण;** ग. **अद्वैतसिद्धान्तसारसंग्रह**। इन नारायणाश्रम के शिष्य थे माधवाश्रम। उन्होंने **स्वानुभवादर्श** ग्रन्थ की रचना की थी।

तत्त्वचन्द्रिकाकार का नाम ज्ञात नहीं है। यह ग्रन्थ शङ्कर-विरचित पञ्चीकरणप्रकरण के ऊपर आनन्दगिरि-विरचित व्याख्या की टीका है।[2]

प्रसिद्धि है कि १६वीं शती में काशी में एक प्रसिद्ध वैदान्तिक आचार्य थे **प्रकाशानन्द**, जिनके साथ महाप्रभु चैतन्यदेव का विचार-विमर्श हुआ था और जिन्होंने अद्वैत-मत का त्याग कर चैतन्यमहाप्रभु का मतानुसरण करते हुए **प्रबोधानन्द सरस्वती** नाम ग्रहण किया था। ये प्रबोधानन्द अन्त में वृन्दावन जाकर वैष्णव तथा भक्ति-मत का प्रचार करते रहे।

अप्पय्यदीक्षित इसी शती में काशी में विराजमान थे। उनके पिता का नाम **रंगराजाध्वरि** और पितामह का नाम **आचार्य दीक्षित**[3] अथवा **आचान दीक्षित** था। ये भारद्वाजगोत्रीय सामवेदी थे। रंगराज ने पञ्चपादिका-विवरण की टीका 'दर्पण' की रचना की थी। इनका दूसरा ग्रन्थ है—**अद्वैतमुकुर**।

अप्पय्यदीक्षित असाधारण पण्डित थे। बहुत शास्त्रों में उन्होंने प्रौढ़ि प्राप्त की थी और अनेक ग्रन्थ रचे थे। यद्यपि अप्पय्यदीक्षित दक्षिण देश के पण्डित

---

१. शेष नृसिंह के पुत्र शेष रामचन्द्र कौन हैं? संभवतः, बहुव्रीहिसमास मानने पर यह नृसिंह के पिता रामचन्द्र हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में ये रामचन्द्र शेषकृष्ण के पितामह हो सकते हैं। एक और रामचन्द्र हैं, वे भी नृसिंह-पिता हैं। परन्तु ये रामचन्द्र प्रक्रियाकौमुदीकार ही हैं, शेष रामचन्द्र नहीं। आचार्य रामचन्द्र के पौत्र विट्ठल ने रामेश्वरभट्ट, अनन्त और जगन्नाथाश्रम को प्रणाम सूचित किया है। प्रश्न होता है कि ये रामेश्वर क्या नारायणभट्ट के पिता थे अथवा जगन्नाथाश्रम नृसिंह के गुरु थे? इसका समाधान अपेक्षित है।—ले०

२. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, पृ० ७३३।

३. आचार्य के संरक्षक थे विजयानगर के राजा कृष्णदेवराज। एक समय वे अपनी रानी के साथ 'वरद' देव के दर्शन के लिए मन्दिर में गये थे। उस समय आचार्य दीक्षितजी ने कहा था—

काञ्चित् काञ्चनगौराङ्गीं वीक्ष्य साक्षादिव श्रियम्।
वरदः संशयापन्नः वक्षःस्थलमवैक्षत॥

यह सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो राजा ने उन्हें 'वक्षःस्थलाचार्य' की उपाधि दी। अप्पय्यदीक्षित ने चित्रमीमांसा में इस श्लोक को उद्धृत किया है—यथाऽस्मत्कुलकुटस्यवक्षःस्थलाचार्यविरचित-वरदराजवसन्तोत्सवे—'काञ्चित् काञ्चन' इत्यादि।

थे, तथापि उन्होंने कुछ काल तक काशी में निवास किया था। इसलिए, उनके नाम का काशी के विद्वानों के मध्य में स्मरण करना आवश्यक समझा गया। मधुसूदनसरस्वती ने अद्वैतसिद्धि में अप्पय्यदीक्षित का सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कहकर सम्मान प्रदर्शित किया है—**सर्वतन्त्रस्वतन्त्रैर्भामतीकारकल्पतरुकारपरिमलकारैः**। इससे प्रतीत होता है कि **अद्वैतसिद्धि** की रचना होने के पूर्व ही अप्पय्यदीक्षित-विरचित भिन्न-भिन्न ग्रन्थों का प्रचार हो गया था। अप्पय्य ने स्वयं नृसिंहमुनि के नाम से नृसिंहाश्रम तथा प्रकाशानन्द का उल्लेख किया है। अतएव, सिद्धान्तलेश का रचना-काल १५४७ ई० या तत्त्वविवेककार के समय के अनन्तर है। नृसिंहाश्रम से प्रभावित होकर अप्पय्यदीक्षित वेदान्त की ओर आकृष्ट हुए थे, ऐसी प्रसिद्धि है। श्रीमहालिङ्गशास्त्री का मत है कि अप्पय्यदीक्षित का जन्म-काल सन् १५२० ई० और तिरोभाव-काल सन् १५९३ ई० है। उनका जीवित-काल ७३ वर्ष है। पहले विशेषज्ञ लोगों ने इस विषय में तीन प्रकार के भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये थे—(१) १५६४ से १६३६ ई०, (२) १५५० से १६२३ ई० और (३) १५५३ से १६२६ ई०। यह तृतीय मत कुप्पुस्वामी शास्त्रीजी का है। अप्पय्यदीक्षित के संरक्षक थे—राजकुमार चिन्नतिम्म, जो दक्षिण के सेनाध्यक्ष तथा राजप्रतिनिधि (१५४२–१५५०) थे। उन्हीं के अनुरोध से वेदान्त-देशिक-कृत यादवाभ्युदय पर अप्पय्यदीक्षित ने टीका रची थी। उनके दूसरे संरक्षक वेल्लूर के चिन्नबोम्म थे, जिनका तिरोधान-काल १५८२ ई० माना जाता है। अप्पय्य के शैवग्रन्थों का निर्माण इन्हीं के समय में हुआ था। १५८२ ई० में अप्पय्य का कनकाभिषेक हुआ था। इसी सुवर्ण से उनके जन्म-स्थान में कालकण्ठेश्वर नामक एक शिव मन्दिर स्थापित हुआ था। समरपुंगवदीक्षित ने अपने 'यात्राप्रबन्ध' में इस सुवर्णाभिषेक का उल्लेख किया है—

हेमाभिषेकसमये परितो निषण्णसौवर्णसंहतिमिषाच्चिनवोम्मभूपः।
अप्पय्यदीक्षितमणेरनवद्यविद्याकल्पद्रुमस्य कुरुते कनकालवालम्॥

उनके तृतीय संरक्षक थे वेङ्कटपति देवराय (पेनुकुण्डार)। ये १५८५ ई० में राजसिंहानारूढ़ हुए थे। कुवलयानन्द और विधिरसायन इन्हीं के समय में रचे गये थे। कुवलयानन्द वेङ्कटपति के अनुरोध से लिखा गया था, इसका उल्लेख उसी में है। अप्पय्य के चतुर्थ संरक्षक थे नरसिंहदेव।

प्रसिद्धि है कि **भट्टोजिदीक्षित** तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में काशी से दक्षिण देश में गये थे। वहाँ जाकर मीमांसा और वेदान्त का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अप्पय्यदीक्षित का आश्रय लिया था। उस समय अप्पय्यदीक्षित वृद्ध हो चले थे और वेङ्कटपति की सभा में थे। उन्होंने भट्टोजिदीक्षित का राजा से परिचय करा दिया था। सिद्धान्तकौमुदी की रचना करने के कारण दक्षिण-यात्रा करने के पूर्व ही भट्टोजिदीक्षित की ख्याति फैल चुकी थी। वेङ्कटपति के अनुरोध से भट्टोजि-दीक्षित ने 'वेदान्ततत्त्वकौस्तुभ' नामक वेदान्त-ग्रन्थ की रचना की।

अप्पय्यदीक्षित कुछ काल तक काशी में रहे थे। यहाँ के प्रसिद्ध मीमांसक **खण्डदेव** के साथ उनका परिचय हुआ था। पण्डितराज जगन्नाथ अप्पय्यदीक्षित के विरोधी थे। इसका मुख्य कारण संभवतः यही था कि अप्पय्यदीक्षित भट्टोजि-दीक्षित के गुरु थे और भट्टोजिदीक्षित पण्डितराज के विरोधी थे, यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है। भट्टोजिदीक्षित की मनोरमा टीका का खण्डन करते हुए पण्डितराज ने 'मनोरमाकुचमर्दन' की रचना की थी।

मदुरा में एक विशिष्ट शास्त्रार्थ के लिए सभा बुलाई गई थी। उस सभा का उद्देश्य था शैव और वैष्णव दार्शनिक सिद्धान्तों के आपेक्षिक उत्कर्षापकर्ष का निर्णय करना। अप्पय्यदीक्षित इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ थे। अप्पय्यदीक्षित शैवपक्ष में थे और ऐयान दीक्षित वैष्णवपक्ष में। यह विचार छह मास तक चलता रहा। इसमें मदुरा के राजा तिरुमल अध्यक्ष थे। वे ही अप्पय्य-दीक्षित को बुलाकर लाये थे। चिदम्बरम् में अप्पय्यदीक्षित का देहावसान हुआ। इनके काल के विषय में कोई भी मत सर्ववादिसम्मत नहीं है।

अप्पय्यदीक्षित-विरचित ग्रन्थों की नामावली--

१. मीमांसा में--(क) **विधिरसायन** (पद्यमय); (ख) **सुखोपयोजिनी** (गद्यमय) टीका; (ग) **उपक्रमपराक्रम**; (घ) **वादनक्षत्रमाला** अथवा **वादावली**; (ङ) **मयूखावली** (शास्त्र-दीपिका-टीका) तथा (च) **चित्रपट**।

२. शैवमत में--(क) **शिवाद्वैतनिर्णय**; (ख) ब्रह्मसूत्र पर **श्रीकण्ठभाष्यटीका शिवार्कमणिमालिका** या **दीपिका**; (ग) **शिवतत्त्वविवेक**; (घ) **रत्नत्रयपरीक्षा**; (ङ) **शिखरिणीमाला**; (च) **शिवार्चनचन्द्रिका**; (छ) **शिवध्यानपद्धति** तथा (ज) **शिवकर्णामृत**।

३. वेदान्त में--(क) **वेदान्तकल्पतरुटीका--परिमल** (अद्वैत); **सिद्धान्त-लेशसंग्रह** (अद्वैत); (ग) **न्यायरक्षामणि** (शिवाद्वैत) तथा (घ) **नयमञ्जरी** (पद्यमय)।

४. विशिष्टाद्वैत में--**नयमयूखमालिका**।

५. द्वैत में--**न्यायमुक्तावली**; यह पुस्तक उनके चतुर्मतसंग्रह का एक अंश है।

६. व्याकरण में--**पाणिनीयवादनक्षत्रमाला**।

७. काव्य में--(क) वेदान्तदेशिक-कृत **यादवाभ्युदय की टीका**। इस टीका में दीक्षितजी ने कहा है--'यह चिन्नतिम्म के अनुरोध से लिखी गई है।' इसमें तिम्मकृत दक्षिणविजय का वर्णन है। चिन्न ने चोल, केरल तथा पाण्ड्य देशों पर विजय प्राप्त की थी। त्रिवांकुर को अपने अधीन किया था तथा समुद्रतीरवर्त्ती अन्यान्य बहुत-से देशों पर विजय प्राप्त की थी। कहा जाता है, त्रिचिन्नावली में उनका शासन-केन्द्र था। इसीलिए, उनको त्रिचिन्नाधिपति कहा जाता है। (ख) **आर्याशतक** अथवा **शिवार्याशतक**।[१]

८. अलङ्कार में--(क) **कुवलयानन्द**, यह प्रथम वेङ्कटपति के अनुरोध से लिखा गया था। वे पेनगोण्डा के शासक थे। उनसे पहले उनके भाई 'रंग' वहाँ के शासक थे। (ख) **चित्रमीमांसा** तथा (ग) **वृत्तिवार्त्तिक**।

१. द्रष्टव्य: Poona Orientalist. Vol. VIII, पृ० २१४ से २३१।

९. स्तवस्तोत्रादि— (क) **वरदराजस्तव** (स्वोपज्ञटीका-सहित); (ख) **दुर्गचन्द्रकलास्तुति**; (ग) **आदित्यस्तोत्ररत्न** (स्वोपज्ञटीका-सहित); (घ) **मानसोल्लास-मार्गबन्धु** (स्तोत्र); (ङ) **आत्मार्पणस्तुति** (अथवा **उन्मत्तपञ्चाशत्**)। प्रसिद्धि है कि अप्पय्यदीक्षित ने धत्तूर खाकर उन्मत्त हो यह स्तोत्र लिखा था। उन्होंने मुझमें भगवद्भक्ति कितनी गहरी है, यह जानने के लिए आत्मपरीक्षणार्थ ऐसा किया था। स्वप्न तथा मद के प्रभाव से अन्तर्मन का पता चल जाता है।

१०. परमत-खण्डन में—(क) **मध्वमुखविध्वंसन** अथवा **मध्वमतविध्वंसन** इसमें ६० श्लोक हैं। गद्य में इसकी टीका है। बनारस गवर्नमेण्ट संस्कृत-कॉलेज के 'सरस्वती-भवन' में महीधर-संग्रह में यह पुस्तक संगृहीत हुई थी। इसका खण्डन वनमाली ने अपने मध्वमुखालङ्कार नामक ग्रन्थ में किया था (द्रष्टव्य : सरस्वती-भवन-टेक्स्ट, नं० ६८)। (ख) **मध्वतन्त्रमुखमर्दन** तथा (ग) **रामानुजश्रृङ्गभङ्ग**।

११. प्राकृत व्याकरण में—**प्राकृतमणिदीप**; इसके उपसंहार में लिखा है कि उनके गुरु सच्चिदानन्द स्वामी थे (द्रष्टव्य : भूमिका, वेदान्ततत्त्वविवेक, मैसूर-संस्करण)। किसी-किसी का मत है कि यह नृसिंहाश्रम का ही नामान्तर है, किन्तु इसमें कुछ प्रमाण नहीं है।

प्रसिद्धि है कि अप्पय्यदीक्षित-विरचित १०४ ग्रन्थ हैं। अप्पय्यदीक्षित के भाई का नाम नारायण था। उनके पाँच पुत्र थे। द्वितीय का नाम था नीलकण्ठ अथवा अइयादीक्षित। ये मदुरा के तिरुमल नायक के प्रधान मन्त्री थे। इनके गुरु का नाम था वेङ्कटमाधव। वेङ्कट के पिता का नाम था गोविन्द दीक्षित, जिन्होंने वार्त्तिकाभरण की रचना की थी।[१]

अब सुविख्यात वेदान्ती **मधुसूदनसरस्वती** के विषय में संक्षेपतः कुछ कहा जायगा। इनका नाम तथा कीर्त्ति अद्वैतवेदान्त के इतिहास में अतुलनीय है। अन्यान्य वेदान्तियों के सदृश द्वैतमत-खण्डन उनको भी रुचता था, किन्तु उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे जैसे महान् वेदान्ती थे, वैसे ही भक्त भी थे। वे दार्शनिक भी थे और कवि भी। मधुसूदन-सरस्वती ने व्यासराज के न्यायामृत का खण्डन करते हुए अद्वैतवेदान्त के सुविख्यात ग्रन्थ **अद्वैतसिद्धि** की रचना की। सुना जाता है कि उनके तीन गुरु थे—श्रीराम, माधव और विश्वेश्वर। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के मतानुसार ये माधव नारायणभट्ट के पिता रामेश्वर-भट्ट के छात्र माधवसरस्वती से अभिन्न थे। किंवदन्ती है कि व्यासराज ने अपने छात्र व्यास रामाचार्य को वेदान्त का अध्ययन करने के लिए मधुसूदन के निकट भेजा था। व्यासराज ने मधुसूदन के निकट पाठ ग्रहण कर अद्वैतसिद्धि का खण्डन करने के लिए न्यायामृत पर न्यायामृततरङ्गिणी नामक टीका रची।

---

१. द्रष्टव्य : Appayya Dikshita's Age, by Mahaling Shastri, Journal, Research Society of Madras, Vol. II. पृ० ३२५। (अप्पय्यदीक्षित के विषय में देखना चाहिए—Proceeding X All India Oriental Conference, पृ० १७६—१९०। किसी-किसी का मत है कि अप्पय्यदीक्षित की रचना के रूप में प्रचलित सभी ग्रन्थ आदि उनके नहीं भी हो सकते।) —ले०

वंगदेश में कहीं-कहीं ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है कि मधुसूदन का जन्म-स्थान फरीदपुर जिले के अन्तर्गत कुटालीपाड़ा के किसी ग्राम में था। इस मत के अनुसार उनके पूर्वपुरुष राममिश्र वैदिक ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम प्रमोदन पुरन्दराचार्य था। उनके तीन भाई थे—श्रीनाथ चूड़ामणि, यादवानन्द न्यायाचार्य तथा वागीश गोस्वामी। उनका पूर्वाश्रम का नाम कमलनयन था। मधुसूदन नवद्वीप में हरिराम तर्कवागीश के छात्र थे और गदाधर के सतीर्थ्य थे। ऐसी प्रसिद्धि है—

नवद्वीपं समायाते मधुसूदनवाक्पतौ ।
चकम्पे तर्कवागीशः कातरोऽभूद्गदाधरः ।।

मधुसूदन ने कुछ दिन प्रथमाश्रम में रहकर गृहत्याग किया। गुरु विश्वेश्वर ने उनका नाम रखा मधुसूदन। ये काशी में चौसट्टी घाट पर एक मठ में निवास करते थे। उनके भाई यादवानन्द प्रतापादित्य के द्वारपण्डित थे। मधुसूदन तुलसीदास के प्रति श्रद्धा रखते थे। इस विषय में एक श्लोक प्रचलित है—

आनन्दकानने काश्यां तुलसी जङ्गमस्तरुः ।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ।।

मधुसूदनसरस्वती के आविर्भाव-काल का अभी ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ। एक मत में उनका समय है १५४० से १६२३ ई०, दूसरे मत में उनका समय है १५५५ से १६१५ ई० तथा तीसरे मत में उनका समय १५७० से १६४० ई० है। इनके ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

१. वेदान्त में—(क) अद्वैतसिद्धि; इसमें उन्होंने न्यायामृत का तीव्र भाव से खण्डन किया है। नृसिंहाश्रम ने भी न्यायामृत का खण्डन किया था; परन्तु वह उतना तीव्र नहीं था। इस खण्डन का रामाचार्य ने न्यायामृततरङ्गिणी में उत्तर दिया। रामाचार्य गोदावरी-तीर पर अम्बापुर में निवास करते थे। रामाचार्य के गुरु उत्तरादिमठ के प्रसिद्ध साधु रघूत्तमतीर्थ थे। किंवदन्ती ऐसी भी है कि रामाचार्य ने छद्मवेष से मधुसूदनाचार्य के निकट प्रत्येक पंक्ति अद्वैतसिद्धि का पाठ ग्रहण कर गुरु-दक्षिणा के रूप में अद्वैतसिद्धि का खण्डन गुरु को भेंट किया। इस घटना का इंगित अद्वैतसिद्धि के अन्त में मिलता है—

इह कुमतिरतत्त्वे तत्त्ववादी वराकः प्रलपति यदकाण्डे खण्डनाभासमुच्चैः ।
प्रतिवचनममुष्मै तस्य को वक्तु विद्वान् न हि रुतमनुरौति ग्रामसिंहस्य सिंहः ।।

रामाचार्य के गुरु का देहान्त १५९६ ई० में हुआ था। (ख) **सिद्धान्त-बिन्दु;** यह शङ्कराचार्य के दशश्लोकी की टीका है, जो बलभद्र के अनुरोध से लिखी गई थी। (ग) **वेदान्तकल्पलतिका;** इसमें मोक्ष पर विचार किया गया है। (घ) **अद्वैतरत्नरक्षण,** यह शङ्करमिश्र के भेदरत्न का खण्डन है। इस विषय में पहले लिखा जा चुका है। (ङ) संक्षेपशारीरक की टीका **संक्षेपशारीरकसार-संग्रह;** (च) शङ्कराचार्य कृत गीताभाष्य पर **गूढ़ार्थदीपिका टीका।**

२. भक्तिशास्त्र में—(क) **भगवद्भक्तिरसायन** तथा इसके प्रथम उल्लास पर टीका; (ख) **श्रीमद्भागवत के प्रथम या प्रथम से तृतीय श्लोक तक तीन श्लोकों की टीका;** (ग) पुष्पदन्तकृत **शिवमहिम्नस्तोत्र**[1] की टीका; उज्जैन में इसकी एक हस्तलिखित प्रति १६५० वि० या १५९३ ई० की है।

३. काव्य में—**आनन्दमन्दाकिनी**।

४. नाटक में—**कृष्णकुतूहल**।

मधुसूदन के शिष्य थे पुरुषोत्तमसरस्वती। उन्होंने सिद्धान्तबिन्दु पर **'बिन्दु-सन्दीपन'** नाम की टीका लिखी थी। पुरुषोत्तम के एक और गुरु थे जिनका नाम था श्रीधरसरस्वती। श्रीधर के गुरु हरिहरानन्द और परमगुरु रामश्रीपाद थे। मधुसूदन के दूसरे शिष्य शेषगोविन्द थे। उन्होंने सिद्धान्तबिन्दु पर **'सिद्धान्तरहस्य'** नामक टीका लिखी थी।

महीधर पुस्तक संग्रह में १७३३ वि० अथवा १६७६ ई० में लिखित एक पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर कई महात्माओं की वन्दना मङ्गलाचरण के रूप में की गई है। उसमें प्रकाशानुभवानन्द, नृसिंह और राघवेन्द्र यति के नाम हैं। श्लोकस्थ 'सद्गुरु' शब्द की प्रकाश और नृसिंह दोनों के साथ योजना की जा सकती है अथवा केवल प्रकाशानन्द के साथ ही।

कृष्णतीर्थ के शिष्य रामतीर्थ भी संभवतः इसी (१६वीं) शती में काशी-निवास करते थे। उनके रचित वेदान्त ग्रन्थ ये हैं—(क) **पदयोजनिका;** यह आचार्य-कृत उपदेशसाहस्री की टीका है। (ख) **अन्वयार्थप्रकाशिका;** यह संक्षेप-शारीरक की टीका है। (ग) सुरेश्वरकृत **दक्षिणामूर्त्तिवार्त्तिक** (मानसोल्लास) **की टीका;** यह वार्त्तिक शंकराचार्य के दशश्लोकी पर है। इसका लिपिकाल है १६३० वि० या १५७३ ई०।[2] (घ) सदानन्द के वेदान्तसार पर **विद्वन्मनोरञ्जनी टीका;** (ङ) **शारीरकरहस्यार्थतत्त्वप्रकाशिका;** इसकी एक प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बम्बई की लाइब्रेरी में है।[3] (च) **वाक्यार्थदर्पण;** यह शारीरक-शास्त्रार्थसंग्रह रूप है। क्या वे रामतीर्थ भक्तिविवेककार अनन्तदेव (प्रथम) के गुरु थे?

नृसिंहसरस्वती कृष्णानन्दस्वामी के शिष्य थे। ये १५१८ या १५१० शकाब्द में, अर्थात् १५९६ अथवा १५८८ ई० में काशी में रहे तथा गोवर्द्धन नामक किसी व्यक्ति के अनुरोध से इन्होंने वेदान्तसार की टीका **'सुबोधिनी'** की रचना की थी—

गोवर्द्धनप्रेरणया विमुक्तिक्षेत्रे पवित्रे नरसिंहयोगी।
वेदान्तसारस्य चकार टीकां सुबोधिनीं विश्वपतेः पुरस्तात्॥

सदानन्द विरचित वेदान्तसार की दोनों प्रसिद्ध टीकाएँ काशी में ही रची गई थीं। अनुमान होता है कि वेदान्तसार की रचना भी इसी (१६वीं) शती में काशी में ही हुई थी।

---

१. द्रष्टव्य : Poona Orientalist, Vol. XIII, पृ० १५ से १७।

२. द्रष्टव्य : वेबर-कैटलॉग, नं० ६१६।

३. द्रष्टव्य : वेलकर-कैटलॉग, नं० ११२०।

१६वीं शती में ज्योतिर्विज्ञान के कई प्रसिद्ध ग्रन्थकार काशी में थे। उनमें **नीलकण्ठदैवज्ञ, रामदैवज्ञ, दिवाकरभट्ट** और **नृसिंहदैवज्ञ** प्रधान थे। **नीलकण्ठ** अकबर बादशाह के प्रधान दैवज्ञ थे[1]। वे काशी में ही निवास करते थे। वे गर्गगोत्रीय अनन्तदैवज्ञ के पुत्र थे। अनन्त का आदि निवास विदर्भ देश के धर्मपुर नामक स्थान में था। नीलकण्ठ का ताजिकग्रन्थ १५०९ शकाब्द या १५८७ ई० में रचा गया था।

नीलकण्ठ के छोटे भाई का नाम था रामदैवज्ञ। उनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **मुहूर्तचिन्तामणि** १५२२ शकाब्द या १६०० ई० में काशी में रचित हुआ था। उन्होंने अपनी **सारणी** या करणग्रन्थ (जिसका नाम **रामविनोद** था) की रचना जयपुरराज रामचन्द्र के अनुरोध से उनकी संरक्षकता में की थी। रामचन्द्र बादशाह अकबर के सामन्त थे। राजा टोडरमल को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने **टोडरानन्द-संहिता** की रचना की थी।

दिवाकरभट्ट के पिता का नाम राम था एवं उनका पूर्वनिवास-स्थान गोदावरी के उत्तरतटवर्त्ती गोलग्राम था। ये भारद्वाजगोत्रीय तैत्तिरीय शाखा के महाराष्ट्र-ब्राह्मण थे। दिवाकर बहुत अच्छे मीमांसक तथा बहुत बड़े ज्योतिर्विद् थे। इन्होंने काशी में वेदान्तचर्चा करते हुए देहत्याग किया था। यह बात दिवाकर के पौत्र नृसिंह ने कही है। ग्रहलाघवकार प्रसिद्ध गणेशदैवज्ञ दिवाकर के गुरु थे। नृसिंहदैवज्ञ विष्णुदैवज्ञ के गुरु और ग्रहलाघवकार गणेशदैवज्ञ के भ्रातुष्पुत्र थे।

इसी शती में काशी में केशवभट्ट नामक पण्डित रहते थे, यह सुना जाता है। ये पुण्यस्तम्भ के लौगाक्षिकुल-संभूत थे। उनके पिता अनन्तभट्ट परम शिव-भक्त थे। इनके पितामह का नाम केशवभट्ट था। इनकी रचनाएँ ये हैं—

१. न्याय में—**तर्कदीपिका**; यह केशवमिश्र-विरचित तर्कभाषा की टीका है। इसका रचनाकाल है १५१९ शकाब्द या १५९७ ई०। २. काव्य-साहित्य में—**नृसिंहचम्पू**; यह पाँच स्तवकों में है।

प्रगल्भाचार्य के शिष्य बलभद्रमिश्र का समय भी यही है। इनके पिता का नाम विष्णुदास, माता का नाम माधवी और पत्नी का नाम विजयश्री था। दिनेशचन्द्र बाबू का मत है कि अकबर के अभिषेक के समय जिन बत्तीस हिन्दू-पण्डितों के नाम राज-दरबार में प्रसिद्ध थे, उनमें पन्द्रह पण्डित तार्किक थे। उनमें छठा नाम बलभद्रमिश्र का था। बलभद्र काशी-निवासी थे, इस बात का परिचय, उनकी सप्तपदार्थी टीका 'सन्दर्भ' से मिलता है—'**नत्वा द्युण्डिपदद्वन्द्वं सर्वकामार्थसिद्धये।**' इत्यादि।

वे वासुदेव के भक्त थे। उनके ग्रन्थों के नाम : न्यायवैशेषिक में—क. **सप्तपदार्थी की टीका—सन्दर्भ**; ख. **तर्कभाषा की टीका—प्रकाशिका**; ग. **तार्किकरक्षा-टीका**; घ. **सर्वदेवसूरि-कृत प्रमाणमञ्जरी की टीका**; ङ. **वर्द्धमानकृत द्रव्यकिरणावलीप्रकाश की**

---

१. पृथ्वीशाकब्बरस्य स्फुरदतुलसभामण्डनं पण्डितेन्द्रः।
साक्षाच्छ्रीनीलकण्ठः समजनि जगतीमण्डले नीलकण्ठः॥

'विमल' टीका बलभद्री इस ग्रन्थ में उनके गुरु का नाम प्रगल्भ कहा गया है। काशी में रहकर बलभद्र अनेक शास्त्रों का अध्यापन करते थे। उनमें तर्कशास्त्र, साहित्य, वैशेषिक, वेदान्त, महाभाष्य, मीमांसा और धर्मशास्त्र प्रधान थे। विद्यार्थी उनके निकट पाठ ग्रहण करने के लिए नाना देशों से आते थे। उनकी 'जगद्गुरु' उपाधि थी। उनके एक छात्र ने, जिनका नाम भास्कर था, 'गुणरत्नावली' लिखी थी। गुरु बलभद्र का स्तोत्र उक्त पुस्तक में है।[1] वे दीर्घजीवी थे। 'दुर्गावतीप्रकाश' की रचना के समय वे जीवित थे।

किसी-किसी की धारणा है कि बलभद्र मैथिल ब्राह्मण थे; परन्तु दिनेशबाबू ने युक्तिप्रदर्शनपूर्वक यह सिद्ध किया है कि वे वंगदेशीय थे।[2]

बलभद्र के पुत्र **पद्मनाभ** और **गोवर्द्धन** संभवतः काशी में नहीं रहते थे। पद्मनाभ मध्यप्रदेश में रहते थे। वे वहाँ बघेलवंशीय राजा रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्रदेव की सभा में सभा-पण्डित थे। पद्मनाभ की उपाधि थी—**सर्वशास्त्रारविन्दप्रद्योतन भट्टाचार्य**। वास्तव में वे सर्वशास्त्रवेत्ता थे। पद्मनाभ-कृत **वीरभद्रचम्पू** का रचनाकाल १५७८ ई० है और उनके धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ **दुर्गावतीप्रकाश** का रचनाकाल है १५६३ ई०। [यह दुर्गावती इतिहासप्रसिद्ध गढ़मण्डल की रानी दुर्गावती (१५४८ से १५६४ ई०) थी।] उन्होंने धर्मशास्त्र में **प्रायश्चित्तप्रकाश** की भी रचना की थी। न्यायवैशेषिक और अलंकारशास्त्र में उनके बहुत-से ग्रन्थों ने ख्याति प्राप्त की थी। न्याय में उनकी न्यायनिबन्धप्रकाश की टीका **वर्द्धमानेन्दु** प्रधान है। न्यायलीलावती पर भी उनकी टीका थी। उनके रचित ग्रन्थ ये हैं—१. वैशेषिक में (क) **प्रशस्तपाद-भाष्य की टीका—सेतु**; (ख) **न्यायकन्दलीसार**; (ग) **किरणावलीभास्कर**; (घ) **राद्धान्तमुक्ताहार** और उसकी टीका **कणादरहस्य** तथा (ङ) वर्द्धमानकृत **द्रव्यकिरणावली-प्रकाश-टीका—वर्द्धमानेन्दु**। इस अन्तिम ग्रन्थ में उन्होंने अपने पिता की टीका बलभद्री का सार-संकलन किया है। २. नव्यन्याय-साहित्य में (क) तत्त्वचिन्तामणि के ऊपर **परीक्षा** नाम की उनकी टीका (प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द खण्ड पर) थी। उनके द्वारा रचित (ख) **भूषणविन्यासग्रन्थ** क्या न्यायभूषण पर था? (ग) **पक्षधरोद्धार** नाम का भी उनका एक ग्रन्थ (प्रत्यक्ष तथा अनुमान खण्ड पर) था। ३. अलंकारशास्त्र पर भी उनके ये ग्रन्थ प्रधान हैं—(क) **शरदागम**; यह जयदेव-कृत चन्द्रालोक पर टीका है। (ख) **अलङ्कारभास्कर**; (ग) **काव्यप्रकाशप्रकाश** और उसका खण्डन (?); (घ) **एकावलीविवरणमनोरमा**[3]। ४. वेदान्त में **खण्डनपराक्रम** नाम का उनका एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

१. द्रष्टव्य : वंगे नव्यन्यायचर्चा, पृ० २६२।
२. द्रष्टव्य : वही, पृ० २६९-७०।
३. प्रस्तुत निबंध के लेखक ने बहुत परिश्रम कर अलवर-ग्रन्थागार से पद्मनाभ की 'सेतु' टीका और मैसूर से 'व्योमवती' का स्व० Dr. Arthur Venis के निर्देश से संग्रह किया था। तदनंतर पण्डित दुण्ढिराज शास्त्री के सहयोग से सम्पादन कर चौखम्बा (वाराणसी) से इसका प्रकाशन कराया था। काशी-सरस्वतीभवन-ग्रन्थमाला में किरणावलीभास्कर का प्रकाशन और इन वीरभद्र के विषय में एक ऐतिहासिक लेख U. P. Historical Society Journal के प्रथम भाग में प्रकाशित किया था।—ले०

पद्मनाभ के छोटे भाई **गोवर्द्धनमिश्र** उनके छात्र थे। गोवर्द्धन-विरचित तर्कभाषाटीका प्रभृति ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं और पण्डित-समाज में प्रचलित भी हैं।

गौरीकान्त सार्वभौम भी इस शती में काशी-निवासी विद्वान् थे। ये वंगीय थे; क्योंकि आनन्दलहरी की टीका में 'गौडीय राढीवंशीय सत् श्रोत्रिय' कहकर इन्होंने अपना परिचय दिया है। इनके दीक्षागुरु का नाम बालकृष्ण सरस्वती और विद्यागुरु का नाम रामभद्र था। ये रामभद्र कौन थे? इस विषय में विशेषज्ञों का मत है कि ये नवद्वीप के प्रसिद्ध पण्डित रामभद्र सार्वभौम ही हो सकते हैं।

गौरीकान्त सार्वभौम की रचनाओं के नाम: १. न्यायवैशेषिक में—(क) **तर्कभाषा-टीका—भावार्थदीपिका**; इस टीका में उन्होंने गोवर्द्धन को गोबुद्धि और उनके पिता बलभद्र को बर्बर कहा है। (ख) **वैशेषिकभाष्यविवरण**; (ग) **तत्त्वचिन्तामणिदीधितिविवेचन**; (घ) **सद्युक्तिमुक्तावली**; इसमें ८ परिच्छेद तथा ३४० कारिकाएँ हैं। यह ईश्वरवाद पर अच्छा ग्रन्थ है। इसकी एक प्रति पूना में है। इस ग्रन्थ की समाप्ति के अंश से पता चलता है कि ये राजसभा में बहुत सम्मानित थे। २. तन्त्र में—**आनन्दलहरी की टीका—तरि**। दिनेशचन्द्रजी का अनुमान है कि **गौरीकान्त** श्यामारहस्यकार **पूर्णानन्द** के निकट ज्ञाति के थे। उनके इस ग्रन्थ में श्यामारहस्य का उल्लेख है। ३. विविध विषयों में—**विदग्धमुखमण्डन की टीका**।

इसी शती में, अर्थात् १५७२ वि० अथवा १५१५ ई० में महाप्रभुचैतन्यदेव वृन्दावन जाते समय काशी आये थे एवं कुछ दिनों तक उन्होंने यहाँ अवस्थान किया था। उस समय उनकी भिक्षा का प्रबन्ध **तपनमिश्र** के घर पर था। ये तपनमिश्र पूर्वीय बंगाल के एक निष्ठावान् ब्राह्मण थे। इस विषय में यहाँ अधिक लिखना अप्रासङ्गिक होगा।

सत्रहवीं शताब्दी

भट्टवंशीय **रामकृष्ण** के तीन पुत्र और एक कन्या थी। उनके पुत्रों के नाम—**दिनकर, कमलाकर** तथा **लक्ष्मण** और कन्या का नाम **गङ्गा** था। दिनकर-भट्ट का **दिवाकर** भी नाम है। ये बिन्दुमाधव के भक्त थे। इनके मुख्य ग्रन्थ हैं—१. मीमांसा में—**शास्त्रदीपिका-टीका**; २. धर्मशास्त्र में—क. **दिनकरोद्योत**। उद्योत की पूरी रचना वे नहीं कर सके। यह अति विशाल ग्रन्थ है। इसकी पूर्त्ति उनके पुत्र विश्वेश्वर अथवा गागाभट्ट ने की थी। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र में उन्होंने ख. **शान्तिसार**, ग. **प्रायश्चित्तसार** तथा घ. **कर्मविपाकसार** की रचना की थी। बनारस गवर्नमेण्ट सस्कृत-कालेज में कर्मविपाकसार की १२८ पृष्ठों की एक प्रति है, जिसका लिपिकाल १७११ वि० अथवा १६५४ ई० है। १६९६ वि० अथवा १६३९ की लिखी **कर्मविपाकसार** की एक प्रति इण्डिया ऑफिस में है।[१]

१. द्रष्टव्य: India Office Catalogue, पृ० ५७२—७३।

यह ग्रन्थ उन्होंने शान्तिसार तथा प्रायश्चित्तसार के अनन्तर लिखा था; क्योंकि इसमें उक्त दोनों ग्रन्थों का नामोल्लेख है।

दिनकरभट्ट के पुत्र **विश्वेश्वरभट्ट** अथवा **गागाभट्ट** अति प्रसिद्ध धर्मशास्त्रज्ञ थे। उन्होंने १६७४ ई० के लगभग महाराष्ट्र-नायक छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर पौरोहित्य किया था। उन्होंने शिवाजी को क्षत्रिय घोषित किया था। उनके रचित ग्रन्थों के नाम : १. धर्मशास्त्र में—(क) **आपस्तम्बपद्धति**; (ख) **अशौचदीपिका**; (ग) **कायस्थधर्मदीप** या **प्रकाश** या **पद्धति**;[1] इसका संकलन-काल है १५९९ शकाब्द अथवा १६७७ ई०। (घ) **तुलादानप्रयोग**; (ङ) **दिनकरोद्योत**; यह ग्रन्थ उनके पिता दिनकर की अपूर्ण कृति थी, जिसकी उन्होंने पूर्त्ति की। इसके निम्ननिर्दिष्ट प्रकरण हैं—आचार; अशौच, काल, दान, प्रतिष्ठा, प्रायश्चित्त, व्यवहार, धर्मकृत्य, व्रत, शूद्र, श्राद्ध, शुद्धि, कर्मविपाक और संस्कार।[2] श्राद्ध-प्रकरण की पुस्तक बनारस सं० कॉलेज में है। (च) **सापिण्ड्यविचार**; (छ) **प्रयोगसार** तथा (ज) **समयनय**। २. मीमांसा में—(क) **मीमांसाकुसुमाञ्जलि** (ख) **भाट्टचिन्तामणि**। ३. अलङ्कार में—**राकागम**, यह चन्द्रालोक की टीका है। इसकी टीका का नाम है—'सुधा'। गागाभट्ट का इन ग्रन्थों के सिवा **शिवार्कोदय** भी एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी एक पूर्ण प्रति बड़ौदा-लाइब्रेरी में है, जिसकी पत्र-सं० १—१५९ है।

कमलाकरभट्ट दिनकरभट्ट के छोटे भाई थे। इनका सर्वप्रधान ग्रन्थ **निर्णयसिन्धु** है। यह धर्मशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल १६१२ ई० है। कमलाकर श्रीरामचन्द्रजी के उपासक थे। कमलाकर के अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं : १. धर्मशास्त्र में—(क) **शान्तिकमलाकर** अथवा **शान्तिरत्न**; इसकी रचना निर्णयसिन्धु के बाद हुई थी। इसमें उनके २२ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। (ख) **शूद्रकमलाकर**; प्रतीत होता है कि इसी ग्रन्थ का नामान्तर **शूद्रधर्मतत्त्व** है। (ग) **व्रतकमलाकर**; (घ) **पूर्त्तकमलाकर**; (ङ) **दानकमलाकर**; (च) **तीर्थकमलाकर**; इसमें सब तीर्थों की कृत्यविधि वर्णित है। (छ) **नीतिकलाकर**; (ज) **तत्त्वकमलाकर** (या शास्त्रतत्त्वकौतुक); (झ) **संस्कारकमलाकर**; यह इण्डिया आफिस में है Cat. पृ० सं० ५१४। (ञ) **सर्वशास्त्रार्थनिर्णय**; यह बनारस सं० कॉलेज में है। क्या यह तत्त्वकमलाकर से अभिन्न है? (ट) **कलिधर्मनिर्णय**; (ठ) **कर्मविपाकरत्न**; (ड) **कार्त्तवीर्यपद्धति**; (ढ) **आह्निकलोपप्रायश्चित्त**; (ण) **त्रिपिण्डीविधि**; (त) **गोत्रप्रवरदर्पण**; (थ) **प्रायश्चित्तरत्न**; (द) **व्यवहाररत्न**; पूर्वोक्त (क) से (झ) तक ग्रन्थ कमलाकर-कृत **धर्मकमलाकर** के ही ९ भाग हैं। १०म भाग नहीं मिलता।

२. वैदिक ग्रन्थों में—(क) **सोमप्रयोग**; (ख) **बहुवृचाह्निक** तथा (ग)

१. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, पृ० ५२५—२७ तथा बड़ोद कैटलॉग नं० १६५३ पत्र सं० १४१।

२. द्रष्टव्य : वही, पृ० ५०४—५०५ और ५२५ तथा बीकानेर-कैटलॉग।

रत्नपद्धति। ३. वेदान्त में—(क) **वेदान्तकौतुक** या **वेदान्तकौतूहल** तथा (ख) **वेदान्तरत्न**; अनूप-ग्रन्थालय (बीकानेर) में इसकी एक प्रति है, जिसका नाम प्रति पत्र में लिखा है—'वेदान्तकौतूहल'; परन्तु पुष्पिका में लिखा है—'वेदान्त-रत्न' और फिर उसे काटकर 'वेदान्तकौतूहल' लिखा गया है। ये दो नाम क्या एक ही ग्रन्थ के हैं या पृथक्-पृथक् दो ग्रन्थ हैं?[1] ४. मीमांसा में—(क) **शास्त्रदीपिकाटीका**—**आलोक**; (ख) **तन्त्रवार्त्तिकटीका** या **तात्पर्य**; कमलाकर-कृत वार्त्तिक टिप्पणी का शान्तिरत्न में उल्लेख है। (ग) **मीमांसाकुतूहल**। ५. भक्ति में—**भक्तिरत्न**; इसकी एक प्रति बनारस-संस्कृत-कॉलेज में महीधर-संग्रह में है। इसमें १२२ पृष्ठ हैं, जिसमें वेदान्तकौतुक का उल्लेख है। ६. अलङ्कार में—**काव्यप्रकाशटीका**। ७. काव्य में—(क) **रामकौतुक** (४ सर्ग); इसमें उन्होंने लिखा है कि मुझे १८+१० ग्रन्थों की रचना कर सन्तोष नहीं हुआ, इसीलिए मैंने इस काव्य की रचना की। (ख) **सभादर्शकुतूहल**।

वासुदेवयतीन्द्र कमलाकर के वेदान्त-गुरु थे, इसका पता वेदान्तकौतूहल से चलता है। यह वेदान्त-ग्रन्थ उन्होंने अनन्त के लिए लिखा था। कमलाकर की माता उमा सती हुई थी।[2] लक्ष्मणभट्ट की नैषधटीका के आरम्भ में भी इसका उल्लेख है—

स्पर्धामग्निनिवेशादुमया प्राप्तामुमासमाख्यां ताम्।
द्युनदीनिर्मलचित्तां मातरमेकां सतीं सदा वन्दे॥[3]

कमलाकर के छोटे भाई तथा छात्र **लक्ष्मणभट्ट** थे। उन्होंने धर्मशास्त्र में—क. **आचार-रत्न**; Ulwer Cat. नं० १२५६। ख. **आचारसार**; India Office Cat. पृ० ५०८ तथा ग. **गोत्रप्रवररत्न** की रचना की थी एवं साहित्य में—क. नैषधचरित की टीका **गूढ़ार्थप्रकाशिका** तथा ख. **पद्यरचना** नाम की एक छोटी-सी पुस्तक की रचना भी की थी।

कमलाकर के पुत्र का नाम था—**अनन्तभट्ट**। उन्होंने धर्मशास्त्र में दो ग्रन्थों की रचना की थी—क. **रामकल्पद्रुम** और ख. **सुबोधिनी**। प्रथम ग्रन्थ में आचार, संस्कार, व्रत, दान, समय, श्राद्ध, प्रायश्चित्त, शान्ति तथा राजनीति—इन विषयों पर भिन्न-भिन्न काण्ड हैं। इस ग्रन्थ में विभिन्न स्थलों में कमलाकर के मत का खण्डन किया गया है। द्वितीय ग्रन्थ त्रिंशच्छ्लोकी की टीका है। ग. **प्रयोगरत्न** नाम की एक पुस्तक अनन्त की रचना के रूप में प्रसिद्ध है। इसी अनन्त के लिए कमलाकर ने वेदान्तकौतूहल लिखा था।

दामोदरभट्ट प्रथम शङ्कर के ज्येष्ठ पुत्र थे। दामोदर ने पिता शङ्कर के द्वैतनिर्णय पर एक परिशिष्ट लिखा था। इसके अतिरिक्त **कलिवर्ज्यनिर्णय** तथा **प्रायश्चित्तनिर्णय** भी उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। द्वितीय पुस्तक बनारस-संस्कृत-कॉलेज में है।

१. द्रष्टव्य : Poona Orientalist, Vol. IX, पृ० ७०—७२।
२. द्रष्टव्य : काणे-कृत History of Dharmashastra, Vol. I पृ० ४१२।
३. द्रष्टव्य : Poona Orientalist, Vol. X, पृ० ८२।

सिद्धेश्वरभट्ट दामोदरभट्ट के पुत्र थे। उन्होंने क. **संस्कारमयूख** अथवा **संस्कार-भास्कर** और ख. **संस्कारामृत** की रचना की थी। प्रथम शङ्कर के द्वितीय पुत्र का नाम **नीलकण्ठ** था। उनके रचित द्वादश मयूख धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध है। इन द्वादश मयूखों के नाम हैं—१. **आचारमयूख**, २. **संस्कारमयूख**, ३. **काल या समय-मयूख**, ४. **श्राद्धमयूख**, ५. **नीतिमयूख**, ६. **व्यवहारमयूख**, ७. **दानमयूख**, ८. **उत्सर्ग-मयूख**, ९. **प्रतिष्ठामयूख**, १०. **प्रायश्चित्तमयूख**, ११. **शुद्धिमयूख** और १२. **शान्ति-मयूख**। इस ग्रन्थ का वास्तविक नाम है—**भगवन्तभास्कर**। यह ग्रन्थ नीलकण्ठ ने अपने संरक्षक भगवन्तदेव के सम्मान के लिए उनके नाम से बनाया था। भगवन्तदेव बुन्देलखण्ड के एक राजा थे। उनकी राजधानी यमुना और चंबल के संगम के निकट भरेहा नामक स्थान में थी। उनकी जाति सेनगरा थी। नीलकण्ठ-विरचित अन्यान्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के नाम—(क) **कुण्डोद्योत**; इसपर उनके पुत्र द्वितीय शङ्करभट्ट की टीका है। (ख) **दत्तकनिर्णय**; इस ग्रन्थ का नामनिर्देश धर्मसिन्धु में है। **व्यवहारतत्त्व** के नाम से इनका और एक ग्रन्थ है। वह 'व्यवहारमयूख' का सारसंकलन है। काणे द्वारा सम्पादित व्यवहारमयख के परिशिष्ट के रूप में वह प्रकाशित है। निर्णयसिन्धु में जिस व्यवहारतत्त्व ग्रन्थ का उल्लेख है, वह इससे भिन्न प्रतीत होता है।[१] **धर्मप्रकाश** नाम का एक और ग्रन्थ नीलकण्ठ ने बनाया था, ऐसा सुना जाता है। परन्तु, काणे ने उसका प्रामाण्य स्वीकार नहीं किया है। वह समझते हैं कि वह नीलकण्ठ के पुत्र द्वितीय शङ्कर की रचना है।[२] **श्राद्धप्रकाश** नाम का भी एक ग्रन्थ नील-कंण्ठ की कृति के रूप में प्रचलित है।

नीलकण्ठ के दो पुत्र थे और एक कन्या। कन्या छोटी थी। उनके पुत्रों के नाम थे—**शङ्करभट्ट द्वितीय** तथा **भानुभट्ट**। उनकी कन्या का विवाह भारद्वाज-वंशीय महादेवभट्ट के साथ हुआ था। महादेव बालकृष्णभट्ट के पुत्र और न्याय-सिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाश के रचयिता थे।[३]

द्वितीय शङ्करभट्ट ने पिता के संस्कारमयूख के संकलन में विशेष रूप से साहाय्य किया था। शङ्कर-रचित ग्रन्थों के नाम—(क) **कुण्डभास्कर**; यह उनके पिता के कुण्डोद्योत की टीका है। इसका नामान्तर कुण्डोद्योतदर्शन और रचनाकाल १६७१ ई० है। (ख) **व्रतार्क**;[४] बनारस-संस्कृत-कॉलेज में इसकी एक प्रति है। (ग) **कुण्डार्क**; सन्देह होता है कि यह कुण्डभास्कर से भिन्न है या अभिन्न? (घ) **कर्मविपाकार्क**;[५] महीधर-संग्रह में १८०० वि० या १७४३

१. द्रष्टव्य : Asiatic Society of Bengal Catalogue, Vol. III. पृ० ४५६-५७।

२. द्रष्टव्य : काणे-लिखित, व्यवहारमयूख-भूमिका, पृ० २३।

३. सम्भवतः महादेव ने अपने पुत्र दिनकर के साथ मिलकर प्रत्यक्षखण्डान्त न्यायमुक्तावली की टीका प्रकाश की रचना की थी। अवशिष्ट टीका केवल दिनकर ने ही रची। (द्रष्टव्य : Article by G. V. Devasthali, Poona Orientalist, Vol. VII, पृ० १८७ से १९३)।

४. द्रष्टव्य : वेलङ्कर-कृत Bombay Royal Asiatic Society Catalogue, पृ० ७२३।

५. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, पृ० ५७५।

ई० में लिखित इसकी १६७ पत्रात्मक प्रति है। (ङ) **सदाचारसंग्रह**; (च) **एकादशीनिर्णय** इत्यादि।[1] व्रतकौमुदी नाम की एक और पुस्तक शङ्करभट्ट-रचित मिलती है। यह बनारस-संस्कृत-कॉलेज में है। परन्तु ये शङ्करभट्ट कौन हैं? संवत् १६८४ या १६२७ ई० में लिखा हुआ (संस्कृतमें) एक व्यवस्था-पत्र हमने देखा था, जिसमें शङ्करभट्ट तथा भानुभट्ट का नाम था। भानुभट्ट के साहचर्य से प्रतीत होता है कि ये द्वितीय शङ्कर होंगे।

भानुभट्ट शङ्कर के छोटे भाई थे। इनके रचित ग्रन्थों के नाम—(क) **द्वैतनिर्णय-सिद्धान्तसंग्रह**; बनारस-संस्कृत-कॉलेज में इसकी ७७ पत्रात्मक प्रति है। यह इनके पितामह शङ्करभट्ट (प्रथम) के धर्मद्वैतनिर्णय का सारसंग्रह-रूप है। (ख) **एकव्रतस्नानविधि** तथा (ग) **होमनिर्णय**।

कमलाकरभट्ट की एक बहन थी, जिसका नाम **गङ्गा** था। उसका विवाह काले-वंशज दिवाकर**भट्ट** के साथ हुआ था। यह दिवाकर भैरव तथा वनशङ्करी के उपासक थे। दिवाकर के पिता थे महादेवभट्ट काले। महादेव काले के पिता का नाम रामेश्वरभट्ट काले था। दिवाकर के बड़े भाई का नाम था—बालभट्ट। दिवाकर ने भी बहुत ग्रन्थ लिखे थे। सभी धर्मशास्त्र-विषय पर थे। उनके ग्रन्थों के नाम—(क) **आह्निकचन्द्रिका**;[2] (ख) **कालचन्द्रिका** या **कालनिर्णय-चन्द्रिका**; इसमें नीलकण्ठभट्ट, भट्टोजि और व्रतार्क के वचन उद्धृत किये गये हैं। इसमें लिखा है कि दिवाकर जीवत्पितृनिर्णयकार रामकृष्णभट्ट के दौहित्र थे। (ग) **दानचन्द्रिका**;[3] यह नीलकण्ठ के दानमयूख के आधार पर रचा गया है। बनारस-संस्कृत-कॉलेज में इसकी एक प्रति है। (घ) **स्मार्त्तप्रायश्चित्तसार**;[4] (ङ) **श्राद्धचन्द्रिका**; बनारस-संस्कृत-कॉलेज में इसकी भी एक प्रति ६६ पत्रात्मक है। (च) **पुनरुपनयनप्रयोग** तथा (छ) **पतितत्यागविधि**।

नीलकण्ठ की कन्या का विवाह भारद्वाजवंशीय नैयायिक महादेवभट्ट के साथ हुआ था। महादेव के पिता का नाम बालकृष्ण था। बालकृष्ण के पिता प्रथम महादेव, महादेव के पिता नारायणभट्ट, नारायणभट्ट के पिता माधव और माधव के पिता रामकृष्ण थे। महादेव के दो पुत्र थे—१. दिवाकर और २. दिनकर। कई लोग समझते हैं कि एक व्यक्ति के ही दिवाकर और दिनकर दो नाम थे, किन्तु यह ठीक नहीं मालूम होता। दिवाकर की पत्नी का नाम ऊषा था। दिवाकर के दो पुत्र थे—श्रीराम और बैजनाथ या वैद्यनाथ। मुक्तावलीप्रकाश महादेव और दिनकर का ग्रन्थ पहले कहा जा चुका है। दिनकर के एक कन्या थी। उसका विवाह नारायण जड़े के साथ हुआ था।

दिवाकर ने दानहीरावलीप्रकाश में अपनी वंशावली का जो विवरण दिया

---

१. द्रष्टव्य: India Office Catalogue, पृ० ५९०।
२. द्रष्टव्य: वेलकर-कृत कैटलॉग, नं० ६६९।
३. द्रष्टव्य: वही, नं० ६९०।
४. द्रष्टव्य: वही, नं० ७५५–४६।

है वह नीचे दिया जाता है। दिवाकर से गङ्गाराम जड़े तक जो सम्बन्ध सूत्र है उसका भी इससे परिचय प्राप्त होगा। रामेश्वर भट्ट के पुत्र नारायण भट्ट, नारायण भट्ट के पुत्र शङ्करभट्ट (प्रथम), शङ्करभट्ट (प्रथम) के पुत्र नीलकण्ठभट्ट नीलकण्ठ भट्ट की कन्या का विवाह महादेव भट्ट से हुआ। महादेव भट्ट के दो पुत्र हुए दिवाकरभट्ट (पत्नी ऊषा) और दिनकर भट्ट। दिवाकर भट्ट के दो पुत्र हुए—श्रीराम और वैजनाथ। दिनकर भट्ट की एक कन्या हुई उसका विवाह नारायण जड़े से हुआ। नारायण जड़े के पुत्र का नाम गङ्गाराम जड़े था।

दिवाकर के पुत्र **वैद्यनाथ** ने **गोप्रदानविनिर्णय** नाम का ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ की एक प्रति बनारस-संस्कृत-कॉलेज में है। यह ग्रन्थ वैद्यनाथ-रचित है, यह केवल प्रसिद्धिमात्र है। वास्तव में, यह दिवाकर की दानहीरावली का एक अंश है। वैद्यनाथ ने पिता के बहुत ग्रन्थों की अनुक्रमणी बनाई थी। **दिवाकर भारद्वाज** का मुख्य ग्रन्थ धर्मशास्त्रसुधानिधि है। यह धर्मशास्त्र का एक व्यापक महाग्रन्थ है। इसके विभिन्न अंश यों हैं—(क) **आचारार्क**, रचनाकाल १७४३ वि० या १६८६ ई०;[1] (ख) **तिथ्यर्क**, रचनाकाल १७४० वि० या १६८३ ई०; (ग) **दानहीरावलीप्रकाश**;[2] (घ) **प्रायश्चित्तमुक्तावली**; इसकी एक प्रति बनारस संस्कृत कॉलेज में है पत्र सं० १२४, ८१। (ङ) **श्राद्धचन्द्रिका** तथा (च) **सूर्यादि-पञ्चायतनप्रतिष्ठापद्धति**। दिवाकर-विरचित अन्य विषयों की पुस्तकें हैं—**वृत्ति-रत्नाकरादर्श**; यह भट्टमतानुसारी मीमांसा-ग्रन्थ है।[3] सिद्धान्तमुक्तावली की टीका प्रकाश के विषय में पहले कहा जा चुका है। दिवाकर के प्रधान शिष्य थे—प्रेमनिधि पन्त। भारद्वाज-वंश के अन्तिम सुप्रसिद्ध पण्डित थे—बनारस-संस्कृत-कॉलेज के अध्यापक महामहोपाध्याय दामोदर शास्त्री और कलकत्ता-संस्कृत-कॉलेज के अध्यापक महामहोपाध्याय गोविन्द शास्त्री।

हम पहले अप्पय्यदीक्षित के विषय में कुछ कह चुके हैं। उनके समय के कुछ अनन्तर ही काशी में **खण्डदेव** नामक मीमांसा के अद्वितीय आचार्य हुए थे। खण्डदेव से ही नव्य मीमांसा का सूत्रपात समझा जाता है। खण्डदेव का समय संभवतः १५८६ से १६६६ ई० होगा। उनके मुख्य ग्रन्थ हैं—(क) **भाट्टदीपिका**; यह मीमांसा का अति उत्कृष्ट ग्रन्थ है। शम्भुभट्ट ने इसपर टीका लिखी थी। इसके तर्कपाद की टीका नहीं मिलती।[4] (ख) **मीमांसाकौस्तुभ** या **भाट्टकौस्तुभ**; यह मीमांसा-सूत्र की टीका है। इसमें तर्कपाद नहीं है। (ग) **भाट्टरहस्य**; यह ग्रन्थ शब्दबोधप्रक्रिया पर है। उनका **सत्त्वर्थ-लक्षण-खण्डन**, के विषय का एक

१. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, नं० १६१६।
२. द्रष्टव्य : वही, नं० १७०८।
३. द्रष्टव्य : वही, नं० १०९५।
४. कलकत्ता Asiatic Society से जो संस्करण प्रकाशित हुआ था, उसमें तर्कपाद नहीं है। मैसूर से श्रीकस्तूरीरङ्गाचार्य विरचित सूत्रवृत्तिसारावली-सहित एक संस्करण और प्रकाशित हुआ है। शंभुभट्ट की प्रभावली-सहित इसका एक संस्करण १९२२ ई० में बम्बई से प्रकाशित हुआ था। वङ्केश्वर-विरचित भाट्टचिन्तामणि के साथ इसका एक संस्करण १९३४ ई० में मद्रास से प्रकाशित हुआ था।—ले०

ग्रन्थ बड़ौदा में है (नं० ८६८३)। सं० १७२२ वि० या १६६६ ई० में खण्डदेव को काशी-लाभ हुआ था। उनके एक शिष्य **शम्भुभट्ट** थे, जिन्होंने भाट्टदीपिका पर **प्रभावली** नामक एक टीका लिखी थी। उनके दूसरे शिष्य थे—पण्डितराज जगन्नाथ के पिता **पेरूभट्ट** अथवा **जगन्नाथ** स्वयम्। खण्डदेव ने अपने ग्रन्थ में अप्पय्यदीक्षित की 'मीमांसकमूर्द्धन्य' कहकर प्रशंसा की है।

रङ्गोजिभट्ट लक्ष्मीधर के पुत्र और प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित के बड़े भाई थे।[1] पण्डित-समाज में उनकी ख्याति थी। वे प्रसिद्ध वैदान्तिक संन्यासी नृसिंहाश्रम के शिष्य थे और स्वयं भी उन्होंने अद्वैतवेदान्त में दो छोटे-छोटे ग्रन्थ रचे थे—(क) **अद्वैतचिन्तामणि**; सरस्वती-भवन-ग्रन्थमाला (वाराणसी) में इसका प्रकाशन हो गया है। (ख) **अद्वैतशास्त्रसारोद्धार**; इसकी एक प्रति हमने मुकुन्दशास्त्री पुणताम्बेकर के घर में देखी थी। उसमें केवल एक ही परिच्छेद है। रङ्गोजिभट्ट के कुलदेवता कालहस्तीश थे। कालहस्ती-क्षेत्र की बात वरदराज की गीर्वाणपदमञ्जरी में लिखी है। कालहस्ती वर्त्तमान समय में मद्रास-प्रेसिडेंसी के चित्तूर जिलान्तर्गत एक रेलवे स्टेशन है। **भट्टोजिदीक्षित** के विषय में यह प्रसिद्धि है कि उन्होंने तीर्थयात्रा तथा विद्याग्रहण करने के लिए दक्षिण-यात्रा की थी। वहाँ जाकर उन्होंने अप्पय्यदीक्षित से वेदान्त तथा मीमांसा का अध्ययन किया था। उस समय अप्पय्यदीक्षित के संरक्षक वेंकटपति थे। अप्पय्यदीक्षित ने वेङ्कट के साथ उनका परिचय करा दिया था। प्रसिद्धि है कि वेंकटपति के अनुरोध से भट्टोजि ने एक ग्रन्थ वेदान्त पर और एक मीमांसा पर रचा था। उन्होंने तन्त्रसिद्धान्त में इस प्रकार गुरु को प्रणाम किया है—

अप्पय्यदीक्षितेन्द्रानशेषविद्यागुरूनहं नौमि।
यत्कृतिबोधाबोधौ विद्वदविद्वद्विभाजकोपाधी॥

भट्टोजि तैलङ्ग-ब्राह्मण थे। उनका आदिनिवास तैलङ्गाना था। रंगोजि के तुल्य भट्टोजि भी नृसिंहाश्रम के शिष्य थे। उनके व्याकरण और धर्मशास्त्र के गुरु शेषकृष्ण थे। उनके दूसरे गुरु थे नारायणभट्ट के पुत्र **शङ्करभट्ट** (प्रथम)। भट्टोजि के ग्रन्थों के नाम; १. व्याकरण में—(क) **सिद्धान्तकौमुदी**; (रचनाकाल संभवतः १६२५ ई०)। हैमकौमुदीकार मेघविजय कहते हैं कि भट्टोजि कौमुदी-रचना के विषय में हेमचन्द्र-कृत शब्दानुशासन के ऋणी हैं। (ख) **प्रौढ़मनोरमा**; यह सिद्धान्तकौमुदी की टीका है। इसमें शेषकृष्ण के प्रक्रियाकौमुदीप्रकाश का खण्डन है। (ग) **शब्दकौस्तुभ**; यह पूर्ण नहीं हो सका, अपूर्ण ही रह गया। मालूम होता है, यह तृतीय अध्याय के चतुर्थ आह्निक-पर्यन्त ही लिखा गया था। (घ) **धातुपाठनिर्णय तथा** (ङ) **लिङ्गानुशासनवृत्ति**। २. धर्मशास्त्र में—(क) **लघुविस्थलीसेतु**, क्या इसी का नाम विस्थलीसेतुसारसंग्रह है? (ख) **अशौच-**

१. डॉ० बेलवलकर के व्याकरणविषयक ग्रन्थ में ये भ्रमवश रङ्गोजिदीक्षित कहे गये हैं। जहाँतक सुना गया है कि ये दीक्षित नहीं थे, भट्टोजि दीक्षित थे। ये भट्टोजि के छोटे भाई थे, ऐसा भी किसी-किसी का मत है (द्रष्टव्य : सम्पूर्णानन्द-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ५१)।

दशक; यह दशश्लोकी की टीका है। (ग) त्रिंशच्छ्लोकी की टीका; (घ) अशौचनिर्णय; (ङ) मासनिर्णय; (च) सर्वसारसंग्रह; (छ) कालनिर्णयसंग्रह या कालनिर्णयसंक्षेप (हेमाद्रि-कृत निर्णय का संक्षेप); (ज) प्रायश्चित्तविनिर्णय; (झ) धर्मशास्त्रसर्वस्व; (ञ) तिथिप्रदीपक; (ट) तिथिनिर्णय या तिथिनिर्णय-संक्षेप; (ठ) सपिण्ड्यनिर्णय; (ड) सूतकनिर्णय; (ढ) गोत्रप्रवरनिर्णय,[1] गोत्र-प्रवरनिर्णयभास्कर की एक प्रति बड़ौदा-लाइब्रेरी में है (नं० ८८३०)। (ण) निर्णय-चन्द्रिका; (त) आचारप्रदीप; (थ) तीर्थयात्राविधि; (द) श्राद्धकाण्ड; (ध) चन्दन-धारणविधि तथा (न) प्रयोगरत्न। ३. **वेदान्त में**—(क) वेदान्ततत्त्वकौस्तुभ; इसमें माध्व मत का खण्डन है। यह वेंकटपति के अनुरोध से लिखा गया था। (ख) विवरणटीका; यह नृसिंहाश्रम के वेदान्ततत्त्वविवेक पर टीका है। क्या यह तत्त्व-विवेकदीपन-व्याख्या से अभिन्न है? (सम्पूर्णानन्द-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ५२) (ग) अद्वैतकौस्तुभ; क्या यह वेदान्ततत्त्वकौस्तुभ से अभिन्न है? तथा (घ) तत्त्वसिद्धान्तचन्द्रिका।[2] ४. **विविध**—(क) तन्त्राधिकारनिर्णय;[3] इसमें पाञ्चरात्र का प्रामाण्य तथा अधिकार का विचार किया गया है। इसमें भट्टोजि ने अपने को अद्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठापक तथा श्रौतस्मार्त्तसत्सम्प्रदायप्रवर्त्तक कहा है। (ख) वेद-भाष्यसार; (ग) तन्त्रसिद्धान्तदीपिका तथा (घ) तैत्तिरीयसंध्याभाष्य।[4]

भानुजिदीक्षित भट्टोजि के पुत्र थे। इनका नामान्तर है **वीरेश्वरदीक्षित** और **रामाश्रम** (रामभद्राश्रम)। ये बघेलवंशीय राजा कीर्त्तिसिंह के आश्रित थे। इनका काल है १६४१ ई०। इनके रचे हुए ग्रन्थ: १. **धर्मशास्त्र में**—दानविवेक। २. **कोष में**—अमरकोष की टीका व्याख्यासुधा या प्रबोधिनी। यह प्रसिद्ध ग्रंथ है। ३. **व्याकरण में**—मनोरमामण्डन। भट्टोजि ने प्रौढ-मनोरमा में शेषकृष्ण-कृत प्रक्रियाप्रकाश का खण्डन किया था। शेषकृष्ण के पौत्र और शेषवीरेश्वर के पुत्र **शेषचक्रपाणि** ने 'परमत-खण्डन' नामक ग्रन्थ से भट्टोजिदीक्षित द्वारा उद्भावित दोषों का निराकरण कर प्रक्रियाप्रकाश की गौरव-रक्षा की थी। भानुजि ने फिर भट्टोजि का समर्थन करते हुए इस ग्रन्थ का निर्माण किया था।

कौण्डभट्ट रंगोजिभट्ट के पुत्र और छात्र थे। ये भट्टोजि के भतीजे थे। इन्होंने व्याकरण और न्याय-वैशेषिक पर ग्रन्थ लिखे थे: १. **व्याकरण में**—(क) वैयाकरणसिद्धान्तदीपिका; (ख) वैयाकरणसिद्धान्तभूषण; इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ बहुत हैं; क्योंकि यह ग्रन्थ उनकी २२ वर्ष की अवस्था की कृति है। उसके बाद फिर उसका संशोधन नहीं हुआ। (ग) वैयाकरणसिद्धान्तभूषणसार तथा (घ) स्फोटवाद। २. **न्याय-वैशेषिक में**—(क) तर्कप्रदीप, यह ग्रन्थ राजा वीरभद्र के अनुरोध से लिखा गया था।[5] (ख) तर्करत्न;[6] न्यायपदार्थदीपिका में

१. द्रष्टव्य: अलवर-कैटलॉग, ६८१।
२. द्रष्टव्य: सम्पूर्णानन्द-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ५२।
३. द्रष्टव्य: India Office Catalogue, पृ० ८५२।
४. गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह (पृ० ७८) में लिखा है कि मरणोत्तर भट्टोजि को प्रेतावस्था की प्राप्ति हुई थी।
५. द्रष्टव्य: Hall, पृ० ७९।
६. द्रष्टव्य: वही, पृ० ७८।

इस ग्रंथ का उल्लेख है। तथा (ग) न्यायपदार्थदीपिका; इसका प्रकाशन हो चुका है।

कौण्डभट्ट के शिष्य थे **वीरतारामणिराव पण्डितेन्द्र**। इनके पिता का नाम रामचन्द्र था। इन्होंने गुरु-रचित भूषणसार पर एक संक्षिप्त टीका लिखी थी। टीका का नाम था—वैयाकरणमतोन्मज्जन। इसकी एक प्रति हमने श्री श्रीकृष्ण जोशी के पुस्तक-संग्रह में देखी थी।

नीलकण्ठ शुक्ल शब्दशास्त्र में भट्टोजिदीक्षित के शिष्य और अलङ्कार-शास्त्र में भट्टमण्डन के शिष्य थे। इनके पिता का नाम जनार्दन शुक्ल, माता का नाम हीरा एवं मातामह का नाम वच्छाचार्य (वत्साचार्य) था। इनका समय है १६९३ वि० या १६३७ ई०।[1] इनकी रचनाओं के नाम : १. **व्याकरण में**—शब्दशोभा; रचनाकाल १६३७ ई०। २. **काव्य में**—(क) शृङ्गारशतक; इसका रचनाकाल है १६३१ ई०। (ख) ओष्ठशतक या अधरशतक; रचनाकाल १६६६ ई०? (ग) जारजातशतक तथा (घ) चिमनीचरित; यह ग्रंथ मुद्रित हो गया है। यह एक प्रेमकाव्य है। यह अल्लाहवर्दी खान तुर्कमान नामक एक उमराव की पुत्रवधू के अवैध प्रेमविषयक है।[2]

भट्टोजि के पौत्र और भानुजि के पुत्र **हरिदीक्षित** का काशीस्थ वैयाकरण-समाज में अति उच्च स्थान था। ये सुप्रसिद्ध वैयाकरण नागेशभट्ट के गुरु थे। इन्होंने प्रौढमनोरमा पर शब्दरत्न नाम की टीका लिखी थी। प्रसिद्धि है कि यह टीका उनके शिष्य नागेश की रचना है। शब्दरत्न में पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा प्रदर्शित मनोरमा-दूषणों का परिहार उन्होंने किया था।

शेषकृष्ण के पुत्र शेषवीरेश्वर के प्रथम पुत्र का नाम था—**शेषपुरुषोत्तम** और द्वितीय पुत्र का नाम था **शेषचक्रपाणि**। परमत-खण्डनकर्त्ता के रूप में चक्रपाणि का नाम पहले आ चुका है। चक्रपाणि की और भी दो पुस्तकें व्याकरण-विषय की मिलती हैं। चक्रपाणि के पुत्र का नाम गोपीनाथ था। उनके पुत्र का नाम था रामचन्द्र। उन्होंने धर्मानुबन्धिश्लोकचतुर्दशी की व्याख्या की थी।

१७वीं शताब्दी में काशी के पण्डितों में एक उज्ज्वल नक्षत्र-रूप रहे **पण्डितराज जगन्नाथ**। उनके पिता का नाम पेरू या पेरम भट्ट था। प्रथम नाम रसगङ्गाधर में मिलता है और द्वितीय नाम प्राणाभरण में है। उनकी (पण्डितराज की) माता का नाम था—लक्ष्मी। उन्होंने व्याकरण महाभाष्य का पाठ शेषकृष्ण के पुत्र शेषवीरेश्वर से ग्रहण किया था। अपने पिता से भी उन्होंने अध्ययन किया था। उन्होंने वाराणसी में अद्वैतवेदान्त का अध्ययन ज्ञानेन्द्रभिक्षु से, न्यायशास्त्र का अध्ययन महेन्द्र से और पूर्वमीमांसा का अध्ययन खण्डदेव से किया था। उनकी रचनाएँ : १. **अलङ्कारशास्त्र में**—(क) रसगङ्गाधर; यही उनका मुख्य ग्रन्थ है, परन्तु है यह अपूर्ण। इसमें उनकी अपनी पूर्व-रचित गङ्गालहरी प्रभृति पाँच लहरियों का उल्लेख है। रसगङ्गाधर में उनके स्वरचित आसफविलास के

---

१. द्रष्टव्य : Deccan College Manuscript Cat. पृ० १८३, संग्रह १८८२-८३।
२. इस पुस्तक के इतिहास की आलोचना के लिए द्रष्टव्य : P. K. Gode Studies, Vol. II, पृ० ३३० से ३३९ और वही Vol. III, पृ० ४६८ से ४७५।

पद्य भी दिखाई देते हैं। मालूम होता है कि यह उनका अन्तिम जीवन-काल का ग्रन्थ है। उन्होंने अपना अन्तिम जीवन मथुरा में व्यतीत किया था। (ख) चित्रमीमांसाखण्डन। इसकी रचना रसगङ्गाधर के बाद हुई।

२. **गद्य-पद्य काव्यों में**—(क) भामिनीविलास; (ख) प्राणाभरण; इसमें नेपाल के राजा प्राणनारायण का विवरण है। (ग) आसफविलास; इसमें नवाब आसफ अली का वर्णन है। इसकी पूर्ण प्रति नहीं मिलती। आसफ खां शाहजहाँ के खानखाना थे। उन्हीं की मृत्यु के आधार पर यह ग्रन्थ रचा गया था। आसफ खां की मृत्यु १६४१ ई० में हुई थी। आसफ पण्डितराज के अनुरक्त भक्त थे। संस्कृत और हिन्दी-काव्य के प्रति उनका बड़ा अनुराग था। (घ) गङ्गालहरी या पीयूषलहरी; संभवतः यह १६५० ई० से पूर्व रची गई थी।[1] (ङ) अमृतलहरी; (च) करुणालहरी, यह विष्णुस्तोत्र है। (छ) जगदाभरण; यह शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह[2] का प्रशस्ति-रूप है। पण्डितराज दाराशिकोह के अध्यापक थे। (ज) लक्ष्मीलहरी; (झ) यमुनावर्णन (गद्य में); रसगङ्गाधर में इसका उद्धरण है। यह अप्राप्य है। ३. **व्याकरण में**—मनोरमाकुचमर्दन; यह भट्टोजि की प्रौढ़मनोरमा का खण्डन है।

सम्राट् शाहजहाँ ने जगन्नाथ को पण्डितराज की उपाधि दी थी।[3] पण्डितराज के छात्रों में आगरा के **कुलपति मिश्र** तथा **नारायणभट्ट** का नाम सुनने में आता है। कुलपति व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे और जयपुरराज रामसिंह के आश्रित थे। उनके द्वारा विरचित 'संग्रामसार' और 'रसरहस्य' का रचनाकाल १७३३ वि० या १६७६ ई० अथवा १७२७ वि० या १६७० ई० है।

आसफ खां के प्रयत्न से बहुत-से पण्डित सम्राट् शाहजहाँ के परिचय में आये थे। आसफविलास से पता चलता है कि **रायमुकुन्द माथुर** के द्वारा पण्डितराज जगन्नाथ का आसफ अली से परिचय हुआ था। आसफ अली और सम्राट् की प्रसन्नता से जगन्नाथ को 'पण्डितराज' की उपाधि प्राप्त हुई थी। आसफ वैदिक धर्म के प्रति आस्था रखते थे। रायमुकुन्द पहले आसफ खां के दीवान थे। आसफ खां की मृत्यु के बाद तीसरे दिन सम्राट् ने उन्हें 'तन दफ़्तर' पद प्रदान किया था, जिस पद पर पहले यशवन्त राय काम करते थे। यह वृत्तान्त शाहजहाँ के फारसी इतिहासकार मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने स्वरचित बादशाहनामा में लिखा है। आसफ खाँ के जितने सेवकों ने शाहजहाँ को सिंहासनारुढ़

१. वामन पण्डित ने 'गङ्गालहरी' का मराठी में अनुवाद किया था। वामन पण्डित का समय है १६३६ से १६९५ ई०। वामन बीजापुर-निवासी होने पर भी संस्कृत पढ़ने के लिए काशी आये थे और काशी में ही रह गये थे। उन्होंने भर्तृहरिशतक और गीता का पद्यानुवाद किया था। गङ्गालहरी की रचना १६५० ई० से पहले ही हुई होगी (द्रष्टव्य : Gode's Studies Vol. III, पृ० ४६६)।

२. दाराशिकोह हिन्दू-धर्म और दर्शन के अनुरागी थे। उन्होंने १०८ उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया था।

३. द्रष्टव्य : आसफविलास।

होने में सहायता पहुँचाई थी, उनमें रायमुकुन्द प्रधान थे। पण्डितराज संगीतज्ञ भी थे, विशेष करके ध्रुपदों के। कुछ ध्रुपदों की रचना उनके नाम से प्रसिद्ध है। बादशाह जहाँगीर के बड़े लड़के खुर्रम ने आसफ की कन्या के साथ विवाह किया था। आसफ की सहायता से ही वह शाहजहाँ के नाम से भारत के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए थे। रसगङ्गाधर में भी शाहजहाँ के विषय के कुछ श्लोक उद्धृत हैं।[1]

लवङ्गिका के साथ पण्डितराज के प्रणय की कथा सत्य है या असत्य, कहा नहीं जा सकता। किसी-किसी का मत है कि मुगल-दरबार के साथ पण्डितराज का विशिष्ट सम्बन्ध रहने के कारण काशी के पण्डित उनके विरुद्ध थे। लवङ्गिका की कहानी उन्हीं की कल्पना है।

भामिनीविलास से पता चलता है कि जगन्नाथ यौवन-काल से ही दिल्ली-दरबार से संश्लिष्ट रहे। आसफ की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने दिल्ली छोड़ी। अन्त में, किसी-किसी के मतानुसार वे मधुपुरी, अर्थात् मथुरा में रहे और किसी-किसी के मत के अनुसार काशी में।[2]

नारायणभट्ट के भतीजे रघुनाथ भट्ट सम्राट्स्थपति की चर्चा पहले की जा चुकी है। इनकी कन्या का विवाह तत्सत्-वंशीय बालकृष्ण के पुत्र विट्ठलभट्ट के साथ हुआ था। विट्ठल के पुत्र हुए राचमन्द्र। रामचन्द्र नृसिंह के उपासक थे। उन्होंने निम्ननिर्दिष्ट ग्रन्थों की रचना की: १. **वैदिक विषय में**—शाङ्खायनगृह्यसूत्र-पद्धति (आधानपद्धति)। २. **धर्मशास्त्र में**—(क) कृत्यरत्नावली; रचनाकाल १७०५ वि० (भूतशून्यर्थिचन्द्रमितेऽब्दे) या १६४८ ई०।[3] (ख) कालनिर्णयप्रकाश; बड़ौदा-लाइब्रेरी में इसकी एक हस्तलिखित प्रति है। उसका लिपिकाल १६०३ शकाब्द, अर्थात् १६८२ ई० है।[4] (ग) कुण्डश्लोकदीपिका।

रामचन्द्र के एक शिष्य थे। उनका नाम **ईश्वरजित्** था। उन्होंने किसी ग्रन्थ की रचना की या नहीं, इसका पता नहीं है; किन्तु Asiatic Society of Bengal Catalogue की एक पुस्तक सं० २७४१ में उनका लिखा एक श्लोक मिलता है।[5]

---

१. द्रष्टव्य : असमालङ्कार, सहोक्ति, आक्षेप, प्रतीप-अलङ्कारों के उदाहरण।

२. (क) पण्डितराज के विषय में विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य Panditraj Jagannath by V.A. Ramaswami Shastri, Annamalai University Series, No.8, 1942। इनके अनुसार पण्डितराज का समय १५९० से १६६५ ई० है। (ख) पण्डित शालिग्राम शास्त्री लिखित लेख 'पण्डितराज जगन्नाथ' दैनिक 'आज' (काशी) २२ जून, १९५६ ई० तथा (ग) श्रीजगनलाल मुस्तार-लिखित प्रबन्ध 'माधुरी' (लखनऊ) सं० १९८८ वि० में प्रकाशित।

३. द्रष्टव्य : Asiatic Society of Bengal Catalogue by Hara Prasad Shastri, सं० २७३७-३८।

४. द्रष्टव्य : Asiatic Society of Bengal Catalogue by H. P. Shastri, सं० २७४१-४२।

५. द्रष्टव्य : आफ्रेक्टजी का कैटलॉग।

इसी समय **लक्ष्मण पण्डित** नामक एक **कौण्डिन्यगोत्रीय महाराष्ट्र ब्राह्मण** काशी में निवास करते थे। उनके पिता का नाम दत्त तथा पितामह का नाम विश्वनाथ था। वे ब्रह्मज्ञानी वंश के थे। उनकी माता का नाम था—गोजाम्बिका और उनके बड़े भाइयों के नाम थे—गणेश, रघुनाथ तथा राम। उनके कनिष्ठ भ्राता का नाम था विट्ठल। उनके वेदान्त के गुरु थे उत्तमश्लोकतीर्थ, जिन्होंने लघु-वार्त्तिक टीका की रचना की थी। लक्ष्मणभट्ट ने अपने ग्रन्थ में रामाश्रम को प्रणाम किया है। क्या ये रामाश्रम भट्टोजिदीक्षित के पुत्र रामाश्रम हैं? लक्ष्मणभट्ट की रचनाएँ हैं: १. **काव्य साहित्य में**—(क) राघवपाण्डवीय-टीका सारचन्द्रिका; (ख) सारस्वत अद्वैतसुधा (अनूप लाइब्रेरी, बीकानेर में है)। २. **वैद्यक में**—योगचन्द्रिका; अनूप लाइब्रेरी की प्रति का लिपिकाल १७४७ वि० या १६९० ई०है। ३. **वेदान्त में**—अद्वैतसुधा; इसकी एक प्रति पूना में है। इसका लिपिकाल १७१९ वि०, अर्थात् १६६३ ई० है। उनकी सारस्वत अद्वैतसुधा सारस्वत उपनिषद् की टीका है। उस उपनिषद् को कहीं-कहीं रघुवंश भी कहा गया है। यह वेदान्त-मतानुसार रघुवंश की व्याख्या है। नागेश और नारायण लक्ष्मणभट्ट के मामा थे। उनके अध्यापक गुरु का नाम शुक्लदीक्षित था। उन्होंने तर्कशास्त्र का अध्ययन माधव से किया था।[1]

ऊपर जिन उत्तमश्लोकतीर्थ का अद्वैतसुधाकार लक्ष्मण पण्डित के गुरु के रूप में उल्लेख किया गया है, उनके दूसरे शिष्य थे—महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकंठ **चतुर्धर**।[2] उन्होंने लघुवार्त्तिक टीका रची थी, यह पहले कहा गया है।

१७वीं शती के अन्त में नीलकंठ चतुर्धर का काशी में आविर्भाव हुआ था। इनके पिता का नाम **गोविन्द सूरि** और माता का नाम **फुल्लाम्बिका** था। इन्होंने अपने ग्रन्थ की पुष्पिका में 'पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धर-चतुर्धरवंशावतंस' कहकर अपना परिचय दिया है। इन्होंने बहुत ग्रन्थों की रचना की थी। इनका गोत्र था गौतम। इनके तीन भाई थे—शिव, श्रीकृष्ण और त्र्यम्बक। इनके पुत्र का नाम था गोविन्द। गोविन्द के पुत्र थे शिवदीक्षित। इन्होंने प्रतिष्ठान (पैठन) में धर्मतत्त्वप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना १७४६ ई० में की थी।

चतुर्धर-रचित ग्रन्थों के नाम: १. **वेदान्त में**—(क) वेदान्त-कतक; (ख) मन्त्रशारीरक; (ग) आनन्दमयाधिकरणविचार तथा (घ) शिवाद्वैतनिर्णय। २. **पुराणेतिहास में**—(क) महाभारत की टीका भावदीप या भावदीपिका; गीता की टीका इसी के अन्तर्गत है। महाभारत, आदिपर्व की टीका शकाब्द १६०९ या १६८७ ई० की लिखित वंगीय साहित्य-परिषद् में है। नीलकण्ठ की टीका से पहले महाभारत पर बहुत टीकाएँ थीं। जैसे, सर्वज्ञनारायण की टीका, देवबोध या देवस्वामी की, विमलबोध की, चतुर्भुजमिश्र की, अर्जुनमिश्र की, सृष्टिधर की, विद्यासागर की टीका इत्यादि। विद्यानिधिभट्ट, वैशम्पायन, लक्ष्मण प्रभृति के नाम भी

१. द्रष्टव्य: Poona Orientalist, Vol. X, पृ० १—७, सन् १९४५ ई०।

२. द्रष्टव्य: उनकी रुद्रसारसंग्रह-व्याख्या।

महाभारत के टीकाकारों में उल्लेख्य हैं।[1] (ख) हरिवंश की टीका; (ग) मन्त्रभागवत की टीका—मन्त्ररहस्यप्रकाशिका; इसकी एक प्रति हमने देखी थी, जिसपर लिपिकाल १७६० वि० या १७०३ ई० अङ्कित था। मन्त्रभागवत के चार काण्ड हैं—गोकुलकाण्ड, वृन्दावनकाण्ड, अक्रूरकाण्ड और मथुराकाण्ड। इस ग्रन्थ में २५० मन्त्रों का अस्तित्व है, ऐसी प्रसिद्धि है; किन्तु मिलते हैं १०९ ही। (घ) मन्त्ररामायण की टीका; इसमें १५६ मन्त्रों की बात है, किन्तु मिलते हैं १४६ ही। (ङ) मन्त्रकाशीखण्डटीका (सं० वि० में एक प्रति है नं० ३९५७); (च) गणेश गीता-टीका; रचनाकाल १६९४ ई०।[2] यह प्रति काशी में लिखी गई थी। इसका प्रकाशन आनन्दाश्रम से हुआ है। (६) सौरपौराणिकमतसमर्थन स्वरचित टीका-सहित; इसमें पौराणिक-मत और सूर्यसिद्धान्त-मत का समन्वय किया गया है।[3] **तन्त्र में**—(क) शिवताण्डवटीका अनूपाराम;[4] यह अङ्कयन्त्रविषयक प्रसिद्ध तन्त्रग्रन्थ है। इसका रचनाकाल १६०२ शकाब्द, अर्थात् १६८० ई० है। काशी-सरस्वती-भवन में जो पुस्तक है, उसका लिपिकाल १८५९ ई० है। मूल ग्रन्थ के ऊपर **प्रेमनिधि पन्त** की मल्लादर्श नामक टीका भी है। ४. **विविध**—(क) गणेश-उपासना-विषयक ग्रन्थ; (ख) ज्ञानाङ्कुश; (ग) रुद्रमीमांसा, (घ) रुद्रसारसंग्रह की टीका तथा (ङ) विधुराधानविचार या अपत्नीकाधानविचार।

नीलकण्ठ ने काशी में ही महाभारत की टीका की रचना की थी। यह **नीलकण्ठ** ने हरिवंश की टीका में स्वयं कहा है—

तेषां ज्येष्ठो नीलकण्ठः काश्यां विश्वेशतुष्टये।
व्यातनोद् भारते भावदीपमान्ध्यविनाशनम् ॥

नीलकण्ठ के पूर्वज (पूर्वपुरुष) गोविन्द कूर्परनगर अथवा कोपरगाँव में निवास करते थे। कूर्परग्राम से कमलाकर नामक पण्डित काशी आये थे और यहाँ

---

१. द्रष्टव्य : P. K. Gode, Studies in Iadian Literary History, Vot. I पृ० ४१७ से ४२२।

२-३. द्रष्टव्य : Bombay Royal Asiatic Society Cat. पृ० २९८।

४. इस ग्रन्थ के विषय में यह इतिवृत्त है कि नीलकंठ के आश्रयदाता थे—बीकानेर अथवा विक्रमनगर के राजा अनूपसिंह। ये औरंगजेब के अधीन सेनापति थे। बादशाह के दक्षिण-अभियान के समय अनूपसिंह उनके साथ रहे (द्रष्टव्य : नेपाल-दरबार-कैटलॉग, भाग २, पृ० २९)। अनूपसिंह के पिता शूरसिंह थे और उनके पिता थे राजा रायसिंह। शिवताण्डव की टीका का रचनाकाल शकाब्द १६०२ (इक्पूर्णाष्टि), अर्थात् १६८० ई० है। इसमें कहा गया है कि वर्त्तमान काल में उपलब्ध शिवताण्डव-टीका ग्रन्थकार का द्वितीय उद्यम है। राजा के अनुरोध से यह टीका लिखी गई थी। उनकी प्रथम रचित टीका लुप्त कर दी गई या छिपा दी गई थी। अनूपसिंह के दरबार में मणिराम भी रहते थे। उन्होंने भावदीपसार की रचना की थी। अनूप की दक्षिण-यात्रा के समय संभवतः वह साथ रहे।—ले०

इसमें नीलकण्ठ ने कहा है कि उनके वेदान्त के गुरु थे उत्तमश्लोकतीर्थ—

उत्तमश्लोकतीर्थाब्धिलब्धसद्युक्तिमौक्तिकैः।
स्वचिता रुद्रसूक्तस्य द्योतितां धीमतां हृदि ॥

रहते हुए उन्होंने नीलकण्ठ के समय में ही आचारप्रदीप की रचना की थी। आचारप्रदीप में भट्टोजिदीक्षित का नामोल्लेख है।[1] गोविन्द गोदावरी-तट पर कचेश्वर और शुक्रेश्वर के मन्दिर के निकट निवास करते थे। यह नीलकण्ठ के पौत्र **शिवदीक्षित** के धर्मतत्त्वप्रकाश ग्रन्थ में स्पष्टतः वर्णित है। कोपरगाँव से ये लोग एक के बाद एक यों तीन स्थान होते हुए अन्त में पैठन में जाकर बस गये। यह पैठन अहमदनगर जिले में है। निवाडुंगा गाँव महाराष्ट्रराज शाहू ने नीलकण्ठ के प्रपौत्र गङ्गारामदीक्षित को १७४६ ई० में उपहार-स्वरूप दिया था।[2]

नीलकण्ठ के गुरुओं के नाम—'भूमा' में गोपाल और वेद में शिव, विनय में (?), वेदान्त में लक्ष्मणार्य, ऋतुविधि में नारायण तीर्थ, तर्क में धीरेशमिश्र, महाभाष्य में गोलगङ्गाधर और श्रौत में चिन्तामणि।

शिवचतुर्धर नीलकण्ठ के छोटे भाई का नाम था। उन्होंने षण्णवति-श्राद्धप्रयोग की रचना की थी।[3] बनारस-संस्कृत-कॉलेज में इसकी एक प्रति है। उसका प्रतिलिपि-काल १७८० शकाब्द है। ९६ श्राद्ध ये हैं—

अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः।
आन्विष्टिक्यं च पूर्वेद्युः षण्णवत्यः प्रकीर्त्तिताः॥

मौनिवंश में **रंगनाथभट्ट** (प्रथम) प्रसिद्ध लेखक थे। इनके पिता का नाम था—कृष्ण भट्ट या तातभट्ट मौनी। ये सर्वदा काशी में ही रहते थे। रंगनाथ का काल १६२९ ई० है। इन्होंने उत्तररामचरित की टीका लिखी थी। इनके नारायणभट्ट और बालकृष्णभट्ट नाम के दो पुत्र थे। बालकृष्ण सर्वतंत्रस्वतंत्र थे। बालकृष्ण के दो पुत्र थे—वेणीमाधव और **रंगनाथ**। रंगनाथ ने विक्रमोर्वशी की प्रकाशिका नाम की टीका काशी में रची थी। उसका रचनाकाल १६५६ ई० है।

गौरीपतिभट्ट नाम के एक धर्मशास्त्र के पण्डित इस समय काशी में विद्यमान थे। इनके पिता महोपाध्याय दामोदरभट्ट श्रेष्ठ स्मार्त्त थे। गौरीपति ने आचारादर्श की टीका बोधिनी १६९६ वि० या १६४० ई० में लिखी थी—**ऋत्वङ्करसचन्द्राब्दे विक्रमादित्यभूपतेः**। ग्रन्थकार के पिता दामोदर भट्ट मैथिल शङ्कर के शिष्य थे।[4] ग्रन्थ के अन्त में लिखा है—

श्रीमन्मैथिलसूरिवृन्दतिलकः श्रीशङ्करः सत्कविः
शिष्यस्तस्य जलालदीन···दामोदरः पण्डितः।
तत्पुत्रेण सतां मुदे विरचिता। इत्यादि

---

१. द्रष्टव्य : Gode's Studies, Vol. II. पृ० ४७९।
२. द्रष्टव्य : वही, Vol. I, पृ० ४८०-८१।
३. द्रष्टव्य : Asiatic Society of Bengal Cat. सं० २३३०
४. द्रष्टव्य : वही, सं० २१३१।

भास्कर अग्निहोत्री का नामान्तर हरि था। इनके पिता का नाम आपाजी-भट्ट था। इनके विरचित ग्रन्थ हैं—पद्मामृततरङ्गिणी, जिसकी रचना भी काशी में ही १६७३ ई० में हुई थी। इसमें पण्डितराज का एक पद्य पाया जाता है—

विद्रूनागाः प्रतिपेदिरे प्रथमतो जाल्यैव नेतव्यतां
सम्भाव्यास्फुटविक्रमोऽथ वृषभो गौरेव गौरीपतेः।
विक्रान्तेर्निकषं करोतु कतमं मामाद्रिलोकीतले
कण्ठेकालकुटम्बिनीकरुणया सिक्तः स कण्ठीरवः॥

भास्कर का परिवार नासिक के निकट त्र्यम्बकेश्वरपुरी में रहता था। फिर, वहाँ से काशी में आकर रहने लगा। मालूम होता है, पिता और पुत्र दोनों ही काशी में पण्डितराज जगन्नाथ से परिचित हुए थे।[1]

अब काशीवासी देववंशीय पण्डितों के विषय में कुछ कहना है। ये लोग महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। संभवतः १७वीं शती में काशी आये थे। इनके पूर्व-पुरुष गोदावरी-तट पर रहते थे। इस प्रसङ्ग में सबसे पहले **एकनाथ** का वृत्तान्त मिलता है। वे बड़े सन्त थे। वे पहले काशी आये थे। उनके वंश के आपदेव (प्रथम) और अनन्तदेव (प्रथम) के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। प्रथम अनन्तदेव के पुत्र थे आपदेव (द्वितीय)। आपदेव (द्वितीय) के दो पुत्र थे—**अनन्तदेव** (द्वितीय) तथा **जीवदेव**। जीवदेव-विरचित अशौचदीधिति में लिखा है कि द्वितीय आपदेव ने गोदावरी-तट पर जन्म लिया था।[2] वे या उनके पुत्र काशी आये थे। **आपदेव (द्वितीय)** की रचनाएँ : १. **धर्मशास्त्र में**—स्मृतिचन्द्रिका; प्रतीत होता है कि अनन्तदेव की अन्त्येष्टिपद्धति में इसी पुस्तक का उल्लेख है। २. **मीमांसा में**—(क) मीमांसान्यायप्रकाश तथा (ख) अधिकरण-चन्द्रिका। ३. **वेदान्त में**—वेदान्तसार की टीका बालबोधिनी। ४. **भक्ति-शास्त्र में**—भक्तिकल्पलता। अनन्तदेव (द्वितीय) के मथुरासेतु में इसका उल्लेख है। ५. **वैदिक में**—रुद्रपद्धति; इसका लिपिकाल १६६२ वि० या १६०५ ई० है। ६. **विविध**—वादकुतूहल। उनके पुत्र द्वितीय अनन्तदेव ने आपदेव द्वितीय का अपने ग्रन्थ मथुरासेतु की पुष्पिका में यों वर्णन किया है—**सकलशास्त्रार्थतत्त्ववित् वैष्णवसन्मार्गप्रतिपादनैकप्रयोजनगृहीतावतारश्रीमदापदेवसुतानन्तदेवकृत इत्यादि।**

आपदेव (द्वितीय) के ज्येष्ठ पुत्र अनन्तदेव (द्वितीय) थे। उन्होंने धर्मशास्त्र में स्मृतिकौस्तुभ नामक एक विराट् ग्रन्थ की रचना की थी। स्मृतिकौस्तुभ निम्नलिखित खण्डों में विभक्त है—संस्कार, आचार, राजधर्म, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, तिथि और संवत्सर। प्रत्येक खण्ड (कौस्तुभ) पर दीधिति है।

अनन्तदेव (द्वितीय) के अन्यान्य ग्रन्थ : १. **धर्मशास्त्र में**—(क) प्रायश्चित्त-दीपिका तथा (ख) कालनिर्णयबिन्दु।[3] २. **वैदिक में**—(क) अग्निहोत्रप्रयोग; (ख)

१. द्रष्टव्य : God's Studies Vol. II, पृ० ४६० इत्यादि।
२. द्रष्टव्य : Asiatic Society of Bengal Cat. सं० २२८२।
३. द्रष्टव्य : वही, सं० २७६६।

आग्रयणप्रयोग; (ग) चातुर्मास्यप्रयोग; (घ) अन्त्येष्टिपद्धति; इसमें आपदेव की स्मृतिचन्द्रिका का उल्लेख है। (ङ) नक्षत्रसत्रप्रयोग। ३. **भक्तिशास्त्र में**—(क) भगवन्नामकौमुदी की टीका-प्रकाश, इसका अन्यूत-ग्रन्थमाला में प्रकाशन हो गया है। (ख) भगवद्भक्तिनिर्णय;[1] (ग) मथुरासेतु; हमने बहुत दिन पूर्व (सन् १९१६ ई० की फरवरी में) स्व० पण्डित दामोदरलाल गोस्वामीजी के संग्रह में मथुरासेतु की एक प्रति देखी थी। उसमें उनके पिता की भक्तिकल्पलता और पितामह के भक्तिविवेक का उल्लेख है। ४. **मीमांसा में**—(क) पितृकृत मीमांसा-न्यायप्रकाश की टीका—भाट्टालङ्कार; खण्डदेव ने इस भाट्टालङ्कार की समालोचना अपनी भाट्टदीपिका में की है। खण्डदेव का देहावसान १६६५ ई० में हुआ था। ५. **विविध**—(क) वाक्यभेदवाद;[2] (ख) देवतातत्त्वविचार;[3] अनन्तदेव के संरक्षक चन्द्रवंशीय बाजबहादुरचन्द्र थे। इन्हीं के अनुरोध और निर्देश से अनन्तदेव ने स्मृतिकौस्तुभ की रचना की थी। ये औरंगजेब के समकालीन थे। ये अनन्तदेव को गोदावरी के तट से ले आये थे और इन्हींने काशी में उनके निवास का प्रबन्ध कर दिया था। उनके पिता नीलचन्द्र और पितामह त्रिमल्लचन्द्र थे, जिन्होंने काशीस्थ पण्डितों को प्रचुर धनदान किया था। त्रिमल्ल के पिता लक्ष्मणचन्द्र ने हिमालय के बहुत-से राजाओं को पराजित किया था। लक्ष्मणचन्द्र के पिता थे रुद्रचन्द्र और उनके पिता का नाम था कल्याणचन्द्र। कल्याणचन्द्र के पिता थे ज्ञानचन्द्र। ये रुद्रचन्द्र, जहाँतक समझ में आता है, कुमाऊँ के राजा थे। इन्होंने त्रैवर्णिक धर्मनिर्णय पर ग्रन्थ-रचना की थी। द्वितीय अनन्तदेव शायद रघुनाथ के गुरु थे। इन्होंने भोजनकुतूहल, प्रायश्चितकुतूहल, जनार्दनमहोदधि या महोदय तथा काशीमीमांसा की रचना की थी।[4] उनके अन्य ग्रन्थों के नाम हैं—साहित्य-कुतूहल, प्रयोगरत्नभूषा तथा चातुर्मास्यप्रयोग। इन रघुनाथ का संभवतः पूरा नाम **रघुनाथ गणेश नवहस्त** था। उनका निवास-स्थान सतारा जिले में था। उन्होंने काशी आकर द्वितीय अनन्तदेव के निकट विद्याध्ययन किया था। विद्या-ध्ययन के अनन्तर उन्होंने तंजौर की रानी का आश्रय लिया था।[5]

अनन्तदेव द्वितीय के छोटे भाई **जीवदेव वैष्णव** थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में कमलाकरकृत निर्णयसिन्धु तथा नीलकण्ठकृत मयूखों का उल्लेख किया है। उनकी रचनाएँ ये हैं: १. **धर्मशास्त्र में**—(क) अशौचदीधिति; ऐसा प्रतीत होता है कि उनका यह ग्रन्थ उनके बड़े भाई के स्मृतिकौस्तुभ में मिला दिया गया था।[6] म० म० हरप्रसाद शास्त्री समझते हैं कि जीवदेव ने भी अपने बड़े भाई

१. द्रष्टव्य : Hall, पृ० १४५।
२. द्रष्टव्य : वही, पृ० ६२।
३. द्रष्टव्य : वही, पृ० १९०।
४. द्रष्टव्य : Gode's Studies, Vol. II, पृ० ३९१ और ४३४।
५. द्रष्टव्य : रघुनाथ-कृत 'चिकित्सामञ्जरी' की भूमिका (पृ० ४५-४७), जो उज्जैन से १९५९ ई० में प्रकाशित हुई।
६. द्रष्टव्य : Asiatic Society Catalogue, पृ० ३८५।

के तुल्य धर्मशास्त्र में एक विशाल ग्रन्थ की रचना की थी, यह उसी का एक अंश है। परन्तु, डॉ० आर० जी० भण्डारकर समझते हैं कि यह ग्रन्थ संस्कारकौस्तुभ में मिला दिया गया था; क्योंकि अनन्तदेव द्वितीय ने स्वयं स्वीकार किया है कि यह अशौचदीधिति मदनुज जीवदेव-कृत है। (ख) गोत्रप्रवरनिर्णय; (ग) अशौचनिर्णय; संभवतः यह पूर्व ग्रन्थ का ही नामान्तर है।[1] २. मीमांसा में—भट्टभास्कर।[2]

इस समय बनारस में पण्डित-समाज में घुणताम्बेकर-वंश का विशेष सम्मान था। ये लोग पहले गोदावरी-तीर स्थित पुण्यस्तम्भ नामक स्थान में निवास करते थे। तदनन्तर, काशी में आकर बस गये। यह वंश काशी में कब आया, ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। किन्तु, अनुमान किया जाता है कि १६वीं शती के अन्त अथवा १७वीं शती के आरम्भ में ये लोग काशी आये थे।

इस वंश के अनन्त पन्त ने काशी के पण्डित-समाज में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इनके पिता का नाम माझी पन्त, पितामह का नाम बाला पन्त और प्रपितामह का नाम नीलकण्ठ पन्त था। अनन्त पन्त की रचनाएँ प्रायः अलंकारशास्त्र तथा नाटक-काव्य की टीका के रूप में हैं—(क) रसमञ्जरीटीका व्यङ्ग्यार्थकौमुदी, (ख) गोवर्द्धन की आर्यासप्तशती की टीका व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिका, (ग) मुद्राराक्षस-पूर्वकथानक इत्यादि। अनन्त पन्त के पुत्र मुकुन्द ने 'सत्पद्यमुक्तावली' नामक एक सुभाषित ग्रन्थ का संग्रह किया था।

इस वंश के सबसे अधिक प्रसिद्ध पण्डित तथा ग्रन्थकार का नाम महादेव पन्त था। ये बहुत बड़े नैयायिक थे। वंगदेशीय प्रसिद्ध नैयायिक भवानन्द सिद्धान्तवागीश पर इनकी बड़ी आस्था थी। भवानन्द उस समय काशी में निवास करते थे। वंगदेश अथवा नवद्वीप के पण्डित-समाज में भवानन्द का विशेष समादर नहीं हुआ था। परन्तु काशी में महाराष्ट्रीय पण्डित-मण्डली ने उनका विशेष रूप से समादर किया था। महादेव ने 'तत्त्वचिन्तामणिदीधिति' के ऊपर भवानन्द की 'भवानन्दी' टीका पर एक विशाल टीका रची थी। उस टीका का नाम भवानन्दीप्रकाश था। सर्वोपकारिणी के नाम से उसका एक लघु संस्करण भी उन्होंने बनाया था। उनके अन्य ग्रन्थों के नाम यों हैं—(१) न्यायकौस्तुभ, २. गदाधरकृत शक्तिवाद की टीका, ३. ईश्वरवाद, ४. सादृश्यवाद, ५. अनुमिति तथा परामर्श का कार्यकारणभावविचार।

१२ अक्टूबर, सन् १९१६ ई० में हम घुणताम्बेकर-परिवार का ग्रन्थागार देखने गये थे। उसमें महादेव की अपने हाथ से लिखी हुई अनुमानचिन्तामणिदीधिति की टीका भवानन्दी की पूर्ण प्रति हमने देखी थी, जिसकी पत्र-सं० १–२३१, १—१६४ और १—६८ थी। उसका लिपिकाल १७३५ वि०, अर्थात् १६७८ ई०

१. द्रष्टव्य : भण्डारकर-रिपोर्ट, संग्रह १८८३-८४, पृ० ३३।
२. द्रष्टव्य : Hall, पृ० १८८।

था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणत्वजातिविचार, पत्र-सं० १–४ (लिपिकाल १७५३ वि० या १६९६ ई०); सन्निकर्षहेतुताविचार, लिपिकाल १७४७ वि० या १६९० ई० तथा भवानन्द के दशलकार पर सारमञ्जरी टीका १७३८ वि०; ये तीनों उनके स्वहस्तलिखित ग्रन्थ हैं। महादेव की स्वहस्तलिखित पुस्तकों में जो सबसे प्राचीन संवत् मिला, वह १७२७ वि० या १६७० ई० था।

पुणताम्बेकर के घराने की देवी सिद्धेश्वरी थीं। इस विषय में एक किंवदन्ती सुनी जाती है कि यह देवी मौनी-वंश द्वारा ७–८ पीढ़ी पहले से पूजित होती आ रही थीं। यह प्राचीन मूर्त्ति, जब हमने देखी, तब भग्न थी। नवीन मूर्त्ति बनाई गई थी। परन्तु, स्वप्न में उस मूर्त्ति के पूजन के विषय में निषेध हो गया। अतः प्राचीन मूर्त्ति का ही पूजन चला आ रहा है। नवीन मूर्त्ति बरामदे में रखी गई थी।

इस समय के काशीनिवासी पण्डितों में **माधवदेव** का नाम भी उल्लेख्य है। इनका आदिनिवास गोदावरी-तीरस्थ धारासुर ग्राम रहा।[1] इनकी रचनाएँ ये हैं—१. न्यायसार; इसका प्रकाशन हो चुका है। २. तर्कभाषाव्याख्यासार-मञ्जरी; इसमें रुद्र-न्यायवाचस्पति के मत का उल्लेख है। ३. शब्दप्रामाण्यवाद;[2] ४. गुणरहस्य (रामभद्र सार्वभौमकृत) की टिप्पणी।[3]

वरदराज दीक्षित का नाम इस समय के वैयाकरणों में प्रसिद्ध था। ये भट्टोजिदीक्षित के शिष्य थे। इनकी रचनाएँ यों हैं: १. **व्याकरण में**—(क) मध्यसिद्धान्तकौमुदी; (ख) लघुसिद्धान्तकौमुदी तथा (ग) सारसिद्धान्तकौमुदी। २. **साहित्य में**—(क) गीर्वाणपदमञ्जरी अथवा संस्कृतमञ्जरी; इस ग्रन्थ में काशी के घाटों की नामावली दी गई है—राजघट्ट, त्रिलोचनघट्ट, ब्रह्मघट्ट, बिन्दु-माधवघट्ट, मङ्गलागौरीघट्ट, रामघट्ट, अग्नीश्वरघट्ट, नागेश्वरघट्ट, वीरेश्वरघट्ट, सिद्धिविनायकघट्ट, स्वर्गद्वारप्रवेशघट्ट, मोक्षद्वारप्रवेशघट्ट, गङ्गाकेशवघट्ट, जरासन्धघट्ट, वृद्धादित्यघट्ट, सोमेश्वरघट्ट, रामेश्वरघट्ट, लोलार्कघट्ट, अस्सीसङ्गमघट्ट, वरुणा-सङ्गमघट्ट, लक्ष्मीघट्ट, नृसिंहघट्ट, बिन्दुमाधवघट्ट, पञ्चगङ्गेश्वरघट्ट, आदिविश्वेश्वरघट्ट (बिन्दुमाधव के निकट), दक्षेश्वरघट्ट, दुग्धविनायकघट्ट, कालभैरवघट्ट, दशाश्वमेधघट्ट, चतुःषष्टियोगिनीघट्ट, सर्वेश्वरघट्ट, मानससरोवरघट्ट तथा केदारेश्वरघट्ट।

वरदराज-कृत मध्यसिद्धान्तकौमुदी की टीका मध्यमनोरमा के निर्माता का नाम है—**रामचन्द्र शर्मा**[4]। वस्तुतः यह टीका प्रौढ़मनोरमा का संक्षेप मात्र है। यह टीका शिवानन्दभट्ट या शिवानन्द गोस्वामी के अनुरोध से लिखी गई थी और

---

१. द्रष्टव्य : India Office Catalogue पृ०, ६७५-७६।

२. द्रष्टव्य : सम्पूर्णानन्द-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ५३।

३. द्रष्टव्य : Indian Historical Quarterly, १९४२, जून, पृ० ९१-९२।

४. द्रष्टव्य : Asiatic Society of Bengal Catalogue, व्याकरण वि०, पृ० १९३ और भमिका, पृ० १०९-१०।

अकबरकालीन सर्वप्रधान वंगीय पण्डित को उत्सर्ग की गई थी। अनुमानतः सर्वप्रधान पण्डित-पद से **विद्यानिवास** को लक्ष्य किया गया हो। परन्तु, इसका यथार्थ तात्पर्य क्या है, ठीक-ठीक कहना कठिन है।

काशी में १७वीं शती में जितने ज्योतिर्विद् विद्वान् थे, उनमें से किसी-किसी ने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। उन ज्योतिर्विदों में नीलकण्ठ दैवज्ञ के पुत्र **गोविन्द** का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है। उन्होंने काशी में अपने ही पितृव्य रामदैवज्ञ-कृत मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक ज्यौतिष-ग्रन्थ की टीका 'पीयूष-धारा' १५२५ शकाब्द या १६०३ ई० में रची थी। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के ऊपर उनकी लिखी हुई एक विवृति भी मिलती है।[1]

दिवाकरभट्ट के द्वितीय पुत्र और वल्लाल दैवज्ञ के पुत्र श्रीकृष्ण दैवज्ञ के गुरु (दिवाकरभट्ट के ज्येष्ठ पुत्र का नाम भी कृष्ण था) **विष्णु दैवज्ञ** का नाम भी इस प्रसङ्ग में संस्मरणीय है। विष्णु दैवज्ञ के गुरु थे **नृसिंह दैवज्ञ**। ये ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के भतीजा थे। विष्णु दैवज्ञ ने १५३० शकाब्द अथवा १६०८ ई० में सौरपक्षगणित की रचना की थी।

श्रीकृष्ण दैवज्ञ सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् थे। ये अपने पिता **वल्लाल दैवज्ञ** के द्वितीय पुत्र थे। इनके अग्रज का नाम था **राम दैवज्ञ**। ये काशी में ही रहते थे और विश्वेश्वर महादेव के परम अनुरागी भक्त थे। श्रीकृष्ण दैवज्ञ भारत-सम्राट् जहाँगीर की सभा में प्रधान ज्योतिर्विद् थे। इनका आदि निवास विदर्भदेशस्थ पयोष्णी नदी के तीरवर्त्ती दधिग्राम (नागपुर के निकट) में था। ये यजुर्वेदीय देवरातगोत्रीय ब्राह्मण थे। श्रीकृष्ण के पिता वल्लाल अपना ग्राम छोड़कर काशी में आकर बस गये थे :

वल्लालस्तत्तनयः सदैव यः कविवरेषु दत्तनयः।
अपहाय स्वग्रामं काश्यामागाद् भजन् स विद्रामम्॥

श्रीकृष्ण दैवज्ञ के गुरु का नाम था विष्णु दैवज्ञ, जो दिवाकर दैवज्ञ के द्वितीय पुत्र और श्रीकृष्ण दैवज्ञ के छोटे भाई थे। श्रीकृष्ण-विरचित ग्रन्थों के नाम यों हैं—१. भास्कराचार्य-कृत लीलावती की टीका कल्पलतावतार; २. भास्कराचार्य-कृत बीजगणित की टीका नवाङ्कुर तथा ३. श्रीपति की जातकपद्धति की टीका। श्रीकृष्ण के तीन छोटे भाई थे—गोविन्द, रङ्गनाथ और महादेव। गोविन्द के पुत्र का नाम नारायण, रङ्गनाथ के पुत्र का नाम मुनीश्वर और महादेव के पुत्र का नाम वासुदेव था। श्रीकृष्ण दैवज्ञ सम्राट् जहाँगीर की सभा में प्रधान ज्योतिर्विद् थे, यह बात पहले कही जा चुकी है। उनके भतीजा **मुनीश्वर** ने भी इस विषय का प्रकारान्तर से उल्लेख किया है—

---

१. द्रष्टव्य : India Office Catalogue, पृ० १५८३।

श्रीनूरदीनयवनप्रणयैकपात्रं ।
कृष्णो बभूव जनिपद्धतिवृत्तिकारः ।

रङ्गनाथदैवज्ञ श्रीकृष्ण के छोटे भाई थे । इनका जन्म काशी में ही हुआ था । इन्होंने सूर्यसिद्धान्त की टीका गूढ़ार्थप्रकाशिका की रचना की थी । उक्त टीका का रचनाकाल १५२५ शकाब्द, अर्थात् १६०३ ई० है । इस टीका में टीकाकार के वंश का परिचय दिया हुआ है । इस टीका (सूर्यसिद्धान्तटीका, गोलाध्याय, यन्त्राधिकार) में लिखा है कि फिरङ्गी लोग स्वयंवह विद्या जानते हैं । रङ्गनाथ ने लिखा है कि इस टीका का समाप्ति-काल तथा पुत्र मुनीश्वर का जन्मकाल एक ही है । रङ्गनाथ ने इस टीका-रचना के इतिहास के वर्णन-प्रसङ्ग में कहा है कि अपनी आसन्नप्रसवा पत्नी की प्रसव-वेदना के उपशमन के निमित्त उन्होंने भगवान् भास्करदेव को प्रसन्न करने के लिए इस टीका की रचना की थी ।

रङ्गनाथदैवज्ञ के पुत्र मुनीश्वर का नामान्तर था विश्वरूप । इनका जन्मकाल १६०३ ई० है, यह पहले दरसाया जा चुका है । इन्होंने ज्यौतिष में सिद्धान्तसार्वभौम नामक अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ की १५६८ शकाब्द या १६४६ ई० में रचना की थी । किन्तु, इस ग्रन्थ की टीका की थी ४ वर्ष बाद, अर्थात् १५७२ शकाब्द या १६५० ई० में । मुनीश्वर के अन्य ग्रन्थों (उनके सभी ग्रन्थ ज्यौतिष और गणितविषयक ही हैं) के नाम हैं—१. भास्कर-कृत लीलावती की टीका **निसृष्टार्थदूती**; २. सिद्धान्तशिरोमणि की टीका **मरीचि**; इसका रचना-काल १५६० शकाब्द या १६३८ ई० है; ३. पाटीसार तथा ४. (नृसिंह दैवज्ञ के पुत्र रंगनाथ-कृत) भङ्गीविभङ्गी का खण्डन । सिद्धान्तशिरोमणि की टीका में मुनीश्वर ने कहा है—

यः श्रीकृष्णपदाम्बुजाहितमतिः सिद्धान्तवारांनिधेः
पोतः श्रीजहँगीरभूमितिलकस्यानन्तविश्वासभूः ।
षट्शास्त्रेषु कृतश्रमोऽखिलगुरुर्मान्यो वदान्यो विदां
श्रीकृष्णः किमु वर्णनीयविभवः श्रीकृष्ण एवापरः ।।

मुनीश्वर **भास्कराचार्य** के परम भक्त थे । सिद्धान्ततत्त्वविवेककार **कमलाकरभट्ट** भास्कराचार्य के विरोधी होने के कारण मुनीश्वर के भी विरोधी हो गये थे ।

पूर्वोक्त दिवाकरभट्ट के पौत्र तथा श्रीकृष्णभट्ट के ज्येष्ठ पुत्र का नाम नृसिंहभट्ट था । इन्होंने अपने दो पितृव्यों—विष्णु और **मल्लारि**—से विद्या ग्रहण की थी । मल्लारि ने ग्रहलाघव की टीका स्फुटविवृति की रचना की थी । नृसिंह का जन्मकाल शकाब्द १५०८ या १५८६ ई० है । नृसिंह ने १६११ ई० में 'श्रीसूर्यसिद्धान्त' की सौरभाष्य नामक एक टीका लिखी थी । उनका दूसरा ग्रन्थ है भास्कर-कृत सिद्धान्तशिरोमणि पर वासनाभाष्यवार्त्तिक । इस ग्रन्थ की रचना १६२१ ई० में हुई थी । मल्लारि के दो छोटे भाइयों के नाम थे

केशव और विश्वनाथ। विश्वनाथ ने शकाब्द १५४८ या १६२६ ई० में रामदैवज्ञकृत रामविनोद के ऊपर उदाहरण की रचना की थी।[1]

दिवाकर के पौत्र और नृसिंह के छोटे भाई का नाम था शिवभट्ट। उन्होंने नृसिंह के दो पुत्रों—दिवाकर और कमलाकर—को पढ़ाया था। शिवभट्ट की रचनाएँ ये हैं—१. अनन्तसुधारसविवृति तथा २. मुहूर्त्तचूडामणि। जन्मचिन्तामणिकार शिवदैवज्ञ रामदैवज्ञ के पुत्र थे, वे इनसे भिन्न हैं। नृसिंह के ज्येष्ठ पुत्र दिवाकर के विषय में पहले कहा जा चुका है। इन्होंने अपने पितृव्य शिवभट्ट से ज्यौतिष-शास्त्र का अध्ययन किया था। दिवाकर-रचित ग्रन्थों के नाम यों हैं—१. जातकपद्धति या पद्यजातक; श्रीपति तथा केशव के ग्रन्थों के आधार पर इसकी रचना की गई है। २. प्रौढ़मनोरमा; यह केशवकृत जातक की टीका है। ३. मकरन्दविवरण; ४. पद्धतिप्रकाश तथा ५. पद्धतिप्रकाश की टीका गणिततत्त्वचिन्तामणि; उसकी रचना १५९७ शकाब्द या १६७५ ई० में की गई थी। दिवाकर का जन्मकाल १५२८ शकाब्द या १६०६ ई० है।

नृसिंहभट्ट के द्वितीय पुत्र का नाम कमलाकरभट्ट था। भारतीय ज्यौतिषशास्त्र के इतिहास में इनकी अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वानों में गणना की जाती है। इनके मुख्य ग्रन्थ का नाम है सिद्धान्ततत्त्वविवेक। यह सूर्यसिद्धान्त के आधार पर शकाब्द १५८० या १६५८ ई० में काशी में लिखा गया था।[2] इस ग्रन्थ में भास्कर तथा मुनीश्वर के मतों का खण्डन किया गया है।

कमलाकर के छोटे दो भाइयों के नाम थे गोपीनाथ और रङ्गनाथ। रङ्गनाथ दिवाकर और कमलाकर दोनों के छात्र थे। इन्होंने शकाब्द १५६२ या १६४० ई० में ४०० श्लोकों के सिद्धान्तचूडामणि नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के आधार पर लिखा गया है। इसमें ज्ञानराज के मत का खण्डन है, यह पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी का कथन है। इसके अतिरिक्त उन्होंने लघुविभङ्गी नामक एक ग्रन्थ और लिखा था, जिसका खण्डन उत्तरकाल में मुनीश्वर ने किया था।

ज्यौतिष शास्त्र के इतिहास में मुहूर्त्तमाला नामक एक ग्रन्थ की प्रसिद्धि है। उसके रचयिता का नाम है रघुनाथ जोशी और रचनाकाल है १६६० ई०। इन रघुनाथ के हस्ताक्षर १६५७ ई० के प्रसिद्ध व्यवस्था-पत्र पर विद्यमान हैं। इनके पिता का नाम नृसिंह था, जिन्हें भारत सम्राट् अकबर ने असीरगढ़ नामक दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर ज्योतिर्विद् की पदवी प्रदान की थी।[3]

१७वीं शती में जितने संन्यासी विद्वानों ने काशी में आविर्भूत होकर, वेदान्त आदि शास्त्रों में ग्रन्थ रचना कर ख्याति प्राप्त की थी, उनमें नारायणतीर्थ का नाम विशेषरूप से ख्यात है। इनका नामान्तर नारायण भिक्षु था। इनके

१. द्रष्टव्य : गणकतरङ्गिणी, पृ० ७४।
२. भागीरथीसौम्यतटोपकण्ठे वाराणसीस्थो रचयाम्बभूव।
३. द्रष्टव्य : एस० बी० दीक्षित-कृत Indian Astronomy, पृ० ४१४।

ग्रन्थों के अनुशीलन से पता चलता है कि इनके दो गुरु थे—१. वासुदेवतीर्थ और २. रामगोविन्दतीर्थ। इनके शिष्य का नाम ब्रह्मानन्दसरस्वती था।

नारायणतीर्थ ने वेदान्त आदि विभिन्न शास्त्रों में ग्रन्थ-रचना की थी : १. वेदान्त में—(क) सिद्धान्तबिन्दु की टीका सिद्धान्तचन्द्र नामान्तर लघुव्याख्या; महीधर-संग्रह में इसकी १—१२० पत्रात्मक एक पूर्ण प्रति देखने में आई थी। वेणीदत्त के पुत्र कृष्णदत्त के द्वारा वेणीदत्त के अध्ययन के लिए इसकी प्रतिलिपि १६९४ वि० या १६३७ ई० में कराई गई थी। (ख) वेदान्तविभावना टीका। २. न्यायवैशेषिक में—(क) न्यायकुसुमाञ्जलि-कारिकाओं की व्याख्या; (ख) भाषापरिच्छेद की टीका और (ग) दीधितिटीका[1] (?)। ३. मीमांसा में—(क) भाट्टभाषाप्रकाशिका;[2] यह काशी में ही लिखी गई थी। ४. सांख्ययोग में—(क) सांख्यतत्त्वकौमुदी पर टीका तत्त्वचन्द्र; (ख) सांख्यकारिका की टीका सांख्यचन्द्र; (ग) योगचन्द्रिका तथा (घ) योगसूत्रवृत्ति—गूढ़ार्थद्योतनिका। ५. भक्तिशास्त्र में—(क) शाण्डिल्यकृत भक्तिसूत्र की टीका भक्तिचन्द्रिका तथा (ख) भक्त्यधिकरणमाला सटीक। प्रतीत होता है कि ये नारायणतीर्थ १७वीं शती में तो जीवित रहे ही, १८वीं शती में भी कुछ वर्षों तक जीवित रहे। सन् १६५७ ई० के एक निर्णय-पत्र में इनके नाम का उल्लेख है।[3] किसी-किसी का अनुमान है कि सन् १७२० ई० में भी ये जीवित थे।[4] पहले लिखा गया है कि नारायणतीर्थ के दो गुरु थे। मालूम होता है कि वासुदेवतीर्थ से उन्होंने सब शास्त्रों का अध्ययन किया था। इनके अध्यात्म-मार्ग के गुरु थे रामगोविन्दतीर्थ। भक्तिचन्द्रिका में उन्होंने दोनों को प्रणाम किया है।

ब्रह्मानन्दसरस्वती जगद्विख्यात वेदान्तज्ञ विद्वान् थे। मालूम होता है कि ये वंगदेशीय थे, इसीलिए इनकी गौड ब्रह्मानन्द के नाम से प्रसिद्धि है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में अपने गुरु का नाम नारायणतीर्थ कहा है। ये नारायणतीर्थ पूर्ववर्णित नारायणतीर्थ से अभिन्न थे या भिन्न, इसका निश्चय नहीं है। ब्रह्मानन्द की रचनाएँ यों हैं—१. मधुसूदनसरस्वती-कृत अद्वैतसिद्धि की टीका अद्वैतचन्द्रिका (क. लघुचन्द्रिका, ख. गुरुचन्द्रिका); २. अद्वैतसिद्धान्तविद्योतन और ३. सिद्धान्तबिन्दु की टीका न्यायरत्नावली।

स्वयंप्रकाशानन्द का नाम भी इस समय के काशीस्थ संन्यासियों में प्रसिद्ध था। ये अद्वैतानन्द के शिष्य थे। इन्होंने परिभाषार्थसंग्रहचन्द्रिका तथा वेदान्तनयनभूषण इन दो ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें प्रथम ग्रन्थ रत्नगिरिदीक्षितपुत्र वैद्यनाथशास्त्री-विरचित परिभाषार्थसंग्रह की टीका तथा द्वितीय ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र-भाष्यरूप है। इसका नामान्तर है वेदान्तभूषण। इनके प्रधान शिष्य थे वेदान्ती

---

१. द्रष्टव्य : सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ, परिशिष्ट, पृ० ५३।
२. द्रष्टव्य : Hall, पृ० ११८।
३. द्रष्टव्य : पूना-ओरिएण्टलिस्ट, खण्ड ८, पृ० १३०।
४. द्रष्टव्य : सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ५३।

महादेव। इन्होंने विष्णुसहस्रनाम[1] पर एक टीका रची थी, जिसकी समाप्ति १७५० वि० या १६९३ ई० में हुई थी।[2] इन्होंने सांख्यसूत्र तथा योगसूत्र पर भी वृत्तिरचना की थी एवं तत्त्वचन्द्रिका नाम से भी एक ग्रन्थ लिखा था। अमरकोष के ऊपर **बुधमनोहरा** नाम की एक टीका वेदान्ती महादेव ने रची थी, जिसका रचनास्थल काशी तथा रचनाकाल १७५० वि० या १६९३ ई० है—

वत्सरे खेषुमुनिभूमिते श्रावणकृष्णगे।
भान्वन्विते तिथौ भूते तृतीयः पूर्णतामगात्॥

हमने इस पुस्तक की जिस प्रति का निरीक्षण किया था, उसपर लिखा था—'इसे वेदान्ती महादेव ने अपने हाथ से लिखा।' **तत्त्वानुसन्धान** नाम का एक वेदान्त-ग्रन्थ **महादेवानन्दसरस्वती** के नाम से प्रचलित है। इसकी टीका, जिसकी रचना स्वयं उन्होंने की थी, का नाम है **अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ** (परिच्छेद १–४)। इसपर उनके शिष्य **आनन्दसरस्वती** की टीका है। किसी-किसी का अनुमान है कि ये महादेवानन्दसरस्वती संभवतः वेदान्ती महादेव से अभिन्न हों।

स्वयंप्रकाशानन्द के द्वितीय शिष्य का नाम **अच्युतकृष्णतीर्थ** था। अच्युत-कृष्णतीर्थ ने अपने गुरु का इस प्रकार वर्णन किया है—

यो मे विश्वेश्वरक्षेत्रं विश्वेश्वरसमो गुरुः।
समध्यास्ते स्वयंज्योतिर्वाणीसङ्गो भजामि तम्॥
प्रकाशितब्रह्मतत्त्वं प्रकृष्टगुणशालिनम्।
प्रणवस्योपदेष्टारं प्रणमाम्यनिशं गुरुम्॥
यस्य शिष्यप्रशिष्याद्यैर्व्याप्तेयं साम्प्रतं मही।
सर्वज्ञस्य गुरोस्तस्य चरणौ संश्रये सदा॥

इन्होंने अप्पयदीक्षित-विरचित सिद्धान्तलेश की टीका कृष्णालङ्कार की रचना की थी।

इसी समय के आसपास काशी में **रामानन्दसरस्वती** नामक एक वेदान्ती संन्यासी का प्रादुर्भाव हुआ था। इनके गुरु का नाम **गोपालसरस्वती** था। ये काशी में निवास करते थे। इन्होंने अपने ग्रन्थों के मङ्गलाचरण में ढुण्ढिराज, काशिकेश आदि देवताओं को प्रणाम किया है। इनकी रचनाओं के नाम—१. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य की टीका रत्नप्रभा[3]; २. ब्रह्मसूत्रवृत्ति ब्रह्मामृतवर्षिणी और

१. सांख्यवृत्तिसार और विष्णुसहस्रनाम-टीका (महादेव-रचित) बर्लिन-ग्रन्थागार में हैं (द्रष्टव्य : Weber Catalogue)। इन टीकाओं के अन्त में स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि 'वेदान्ती' उपाधि महादेव को उनके गुरु स्वयंप्रकाश से प्राप्त हुई थी—'स्वयंप्रकाशतीर्थाङ्घ्रिलब्धवेदान्ति-सत्पदः', इत्यादि।

२. द्रष्टव्य : A. Venis लिखित वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली का अँगरेजी-अनुवाद, पृ० ६।

३. निर्णयसागर के संस्करण में ग्रन्थकार का नाम गोविन्दानन्द माना गया है; परन्तु आनन्दज्ञान-कृत तर्कसंग्रह (बड़ौदा से प्रकाशित) की भूमिका, पृ० १९ में रत्नप्रभाकार का नाम रामानन्द माना गया है।—ले०

३. पञ्चपादिकाविवरण की टीका—विवरणोपन्यास।[1] विवरणोपन्यास का उल्लेख रत्नप्रभा में यों है—**विप्रतिपत्तीनां प्रपञ्चो निरासश्च विवरणोपन्यासे दर्शितः सुखबोधाय इतीह उपरभ्यते।** किसी-किसी संस्करण[2] में 'विवरणोपन्यासेन' ऐसा पाठ दिखाई देता है, वह ठीक नहीं है; क्योंकि रामानन्द का **विवरणोपन्यास** प्रसिद्ध ग्रन्थ है और वह मुद्रित भी हो गया है।

त्रिलोचनदेव न्यायपञ्चानन एक वंगीय विद्वान् भी इस समय काशी में निवास करते थे। उन्होंने काशी में निवास करते हुए न्यायकुसुमाञ्जलि की एक टीका लिखी थी।

काशीनिवासी वंगीय नैयायिक महामहोपाध्याय **रामचन्द्र सिद्धान्तवागीश** का नाम भी इस प्रसङ्ग में उल्लेख्य है। उन्होंने तत्त्वचिन्तामणिदीधिति पर **विवेचन** नामक एक टीका लिखी थी। इस ग्रन्थ के प्रत्यक्षखण्ड की टीका हमने **पं० बाबू दीक्षित जड़े** के पुस्तक-संग्रह में देखी थी। इस पुस्तक की एक प्रति काशी के सरस्वती-भवन में है, जो १७४६ वि० या १६८६ ई० में **महादेव पुणताम्बेकर** द्वारा लिखित है।[3]

न्यायसूत्रवृत्ति मितभाषिणी के रचयिता **महादेव भट्टाचार्य** भी इसी शती में काशी में विद्यमान थे। इनके पिता का नाम **वागीश्वराचार्य** और माता का नाम **भागीरथी** था। यह ग्रंथ इन्होंने **सोमेश्वरभट्ट** नामक किसी महाशय के अनुरोध से लिखा था।

१७वीं शती के मध्य भाग में वंगदेशीय नैयायिक पण्डितों में **रघुदेव न्यायालङ्कार** का नाम बहुत प्रसिद्ध था। ये **हरिराम तर्कवागीश** के शिष्य तथा **गदाधर भट्टाचार्य** के सतीर्थ्य थे।[4] इन्होंने न्याय-वैशेषिक पर निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की थी—१. तत्त्वचिन्तामणि की टीका तत्त्वदीपिका; इसकी एक प्रति मद्रास में है। २. निरुक्तिप्रकाश; यह तत्त्वचिन्तामणि के ऊपर पक्षधर-रचित आलोक और आलोक की टिप्पणी पर व्याख्यान-रूप में लिखा गया है। ३. न्यायकुसुमाञ्जलि-कारिकाओं की व्याख्या; ४. द्रव्यसार-संग्रह; यह वैशेषिक पर स्वतन्त्र ग्रंथ है। इसकी एक प्रति हमने बाबू दीक्षित जड़े के संग्रह में देखी थी। ५. सिद्धान्ततत्त्व; ६. शिरोमणि-कृत पदार्थखण्डन की व्याख्या और ७. आख्यातवाद की टीका। इनके अतिरिक्त बहुत-से वाद-ग्रन्थ भी उनके बनाये हुए दृष्टिगोचर होते हैं—मुक्तिवाद, सामग्रीवाद, अनुमितिपरामर्शवाद, निश्चयत्वनिरुक्ति इत्यादि।[5]

---

१. इस प्रसङ्ग में द्रष्टव्य : वेदान्तदर्शन का इतिहास, प्रज्ञानानन्दसरस्वती-कृत, पृ० ७९०।

२. द्रष्टव्य : निर्णयसागर-संस्करण, पृ० ४४१।

३. द्रष्टव्य : वर्त्तमान निबन्ध के लेखक द्वारा लिखित Gleanings from the History and Bibliography of Nyaya-Vaisheshika Literature, पृ० ७६-७७ तथा दिनेशचन्द्र भट्टाचार्यकृत 'बंगे नव्यन्यायचर्चा', पृ० २८१।

४. द्रष्टव्य : 'बंगे नव्यन्यायचर्चा', पृ० १८२।

५. द्रष्टव्य : Indian Historical Quarterly, खण्ड २१, पृ० ५४।

सन् १६५७ ई० के एक निर्णय-पत्र पर रघुदेव के हस्ताक्षर हैं।[१] ऐसा सुनने में आता है कि न्याय-वैशेषिक शास्त्रों में रघुनाथशिरोमणि-कृत दीधिति नाम की पाँचों टीकाओं पर रघुदेव रचित टीकाएँ थीं।

यह भी प्रसिद्धि है कि इन रघुदेव न्यायालङ्कार के समीप नव्यन्याय-शास्त्र के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध जैन पण्डित यशोविजयगणि (१६०८-१६८८ ई०) काशी आये थे। यह १६२६ ई० की बात है। उस समय यशोविजयजी की अवस्था १८ वर्ष की थी। यह भी प्रसिद्धि है कि उन्होंने वेष बदलकर ब्राह्मण के रूप में १२ वर्ष तक (१६२६—१६३८ ई०) काशी में रहकर अध्ययन किया था।[२] उस समय काशी में रघुनाथ शिरोमणि के दीधिति आदि ग्रन्थों के पठन-पाठन का पण्डित-समाज में अधिक प्रचार और प्रभाव था। यशोविजय ने कहा है—

न्यायाम्बुधिर्दीधितिकारयुक्ति-
कल्लोलकोलाहलदुर्विगाहः।
तस्यापि पातुं न पयः समर्थः
किं नाम धीमत्प्रतिभाम्बुवाहः॥

दिनेश बाबू ने अपने ग्रन्थ में यह दरसाया है कि इसमें पहली पंक्ति रघुदेव की नकल है।[३] रघुदेवकृत पदार्थखण्डनटीका में लिखा है—

श्रीमद्दीधितिकारकल्पितघटीकोलाहलव्याकुले
मार्गे सञ्चरणाय ..... इत्यादि।

प्रतीत होता है कि उन्होंने रघुदेव से ही न्याय का अध्ययन किया था। इस विषय में और एक बात ज्ञातव्य है कि यशोविजय-कृत अष्टसाहस्रीविवरण में रघुदेव का नामोल्लेख है।[४]

केशवमिश्र की तर्कभाषा पर भाषाप्रसादिनी नाम की एक टीका है। यह टीका दिनेश भट्टाचार्य के अनुसार एक वंगीय पण्डित, जिनकी विद्यावागीश उपाधि थी, की रचना है। उसमें एक स्थल पर 'न्यायवाचस्पतिकृत शब्दपरिच्छेद' का उल्लेख है। अनुमान किया जाता है कि ये १७वीं शती के अन्तिम भाग में काशी में रहते थे।

रामराम भट्टाचार्य के नाम से एक विद्वान् नैयायिक १६५७ ई० में काशी में थे, जिनके हस्ताक्षर चितलेभट्ट-प्रकरण के व्यवस्था-पत्र में मिलते हैं। प्रतीत होता है कि ये प्रसिद्ध वैयाकरण नागेशभट्ट के गुरु पं० रामराम से अभिन्न थे।

राघवेन्द्र भट्टाचार्य शतावधान तथा उनके पुत्र चिरंजीव का यश उस समय काशी में प्रसिद्ध था। यह चिरंजीव नव्यन्यायमें रघुदेव न्यायालङ्कार के छात्र

---

१. द्रष्टव्य : चितलेभट्ट-प्रकरण, पृ० ७९।
२. द्रष्टव्य : J. A. S. B. 1910, पृ० ४६३ इत्यादि।
३. द्रष्टव्य : 'वंगे नव्यन्यायचर्चा', पृ० १०५।
४. द्रष्टव्य : J. A. S. B. 1910, पृ० ४६८

थे। राघवेन्द्र प्रसिद्ध नैयायिक काशीवासी **भवानन्द सिद्धान्तवागीश** के छात्र थे। इन दोनों ने मध्यभारत में निवास करते हुए अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। इनका मूल वासस्थान वंगदेश (गुप्तिपाड़ा) में था।[1] चिरंजीव ने स्वकृत काव्यविलास में रघुदेव का स्वगुरु के रूप में उल्लेख किया है।

१७वीं शती में और भी एक वंगदेशीय सुप्रसिद्ध नैयायिक काशी में निवास करते थे। ये रघुदेव न्यायालङ्कार के समकालिक थे; क्योंकि १६५७ ई० वाले निर्णय-पत्र पर इनके भी हस्ताक्षर हैं। इनका नाम था **जयराम न्यायपञ्चानन**। इनके गुरु **रामभद्र भट्टाचार्य** थे। नव्यन्याय के इतिहास में एकाधिक रामभद्र का उल्लेख मिलता है। एक थे रामभद्र सार्वभौम और दूसरे थे रामभद्र सिद्धान्तवागीश। जयराम के गुरु रामभद्र संभवतः रामभद्र सार्वभौम ही होंगे; क्योंकि न्यायसिद्धान्त-माला के पृ० ६२ में **गुरवस्तु** कहकर जिस सन्दर्भ का उद्धरण किया गया है, वह रामभद्र सार्वभौम-कृत न्यायरहस्य में देखने में आता है।[2] इस अनुमान का दूसरा हेतु यह है कि न्यायसिद्धान्तमाला (पृ० ६८) में गुरुकृत दीधिति में अभिनव पाठ-कल्पना का जो उल्लेख है, उसकी संगति रामभद्र सार्वभौम से बैठती है, रामभद्र-सिद्धान्तवागीश से नहीं।

जयराम के एक शिष्य **लौगाक्षिभास्कर** थे और दूसरे थे **जनार्दनव्यास**। दोनों ही वंगदेशीय नहीं थे और थे उनके परम भक्त। लौगाक्षिभास्कर ने जयराम-कृत पदार्थमाला पर निज-निर्मित प्रकाश नामक व्याख्या में कहा है—'जय-राम सब शास्त्रों में पारंगत थे और तत्-तत् प्रस्थान के वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उन्होंने जयलाभ किया था। जनार्दन ने न्यायसिद्धान्तमञ्जरी की टीका में जयराम का 'जगद्गुरु' पद से उल्लेख किया है।'

जयराम की रचनाएँ यों हैं: १. **न्यायवैशेषिक में**—(क) तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति पर 'गूढ़ार्थविद्योतन' नाम की टीका; (ख) गुणकिरणावलीप्रकाशदीधिति पर 'विवृति' नाम की टीका; (ग) न्यायसिद्धान्तमाला; इसका प्रकाशन सरस्वती भवन-ग्रन्थमाला में हो गया है। (घ) पदार्थमाला अथवा पदार्थमणिमाला अथवा शब्दमाला; यह प्रशस्तपादभाष्य और किरणावली का परिशिष्ट है; (ङ) कारकवाद तथा समासवाद; (च) आलोक के शब्दखण्ड पर रहस्य नामक टीका (छ) न्यायकुसुमाञ्जलि-कारिकाओं पर व्याख्या; (ज) आख्यातवादव्याख्या; (झ) अन्यथाख्यातिवाद तथा (ञ) नञ्वादव्याख्या। २. **अलङ्कारशास्त्र में**—१. काव्यप्रकाश की टीका; इस टीका की एक प्रति सर्वविद्यानिधान कवीन्द्रा-चार्यसरस्वती के ग्रन्थ-संग्रह में थी।[3]

---

१. द्रष्टव्य : Indian Historical Quarterly, Vol. 16, पृ० १–१०; 'प्रवासी' बँगला संवत् १२५५, कार्त्तिक, पृ० ६४–६९ तथा 'बंगे नव्यन्यायचर्चा', पृ० २८०।

२. द्रष्टव्य : काशी-सरस्वती-भवन-स्थित न्यायरहस्य, पृ० २६-२७ तथा Indian Historical Quarterly, Vol. 21, पृ० ९७।

३. द्रष्टव्य : बड़ौदा से प्रकाशित कवीन्द्राचार्यग्रन्थ-सूची।

श्रीनिवासभट्ट नामक एक द्राविड उस समय काशी में निवास करते थे। इनका आदिनिवास काञ्ची के दक्षिण एना नदी के तटवर्ती अनन्तग्राम में था। इस ग्राम में आत्रेयगोत्रीय **समरपुंगवदीक्षित** नामक एक विद्वान् ब्राह्मण निवास करते थे। उनके पुत्र का नाम था **तिमुम्मल दीक्षित**, जो व्याकरण, मीमांसा तथा वेद में निष्णात थे। उनके पुत्र का नाम श्रीनिकेतन था। ये श्रौतकर्म में निपुण थे। श्रीनिवास इन्हीं श्रीनिकेतन के पुत्र थे। ये श्रौत तथा स्मार्त्त कर्मों में निपुण थे, कवि तथा तान्त्रिक (निगमविद्) भी थे। ये तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य से उत्तर में जलन्धरपीठ गये थे। वहाँ सद्गुरु-रूपी किसी महात्मा का अनुग्रह प्राप्त कर, अर्थात् उनसे दीक्षा प्राप्त कर उन्हीं के आदेश से काशी में आकर रहने लगे। उन महात्मा का नाम **सुन्दराचार्य** या **सच्चिदानन्दनाथ** था। उन्होंने **ललितार्चनचन्द्रिका** तथा उसके संक्षिप्त संस्करण **लघुचन्द्रिका** की रचना की थी। श्रीनिवास दीक्षा-प्राप्ति के अनन्तर गुरु-प्रदत्त विद्यानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके अनक शिष्य हुए थे। इन्होंने बहुत-से तान्त्रिक ग्रन्थों की रचना की थी। इनके कतिपय तन्त्र-ग्रन्थों के नाम यों हैं—१. भैरवार्चापारिजात; २. सौभाग्य-रत्नाकर (१ से ३६ तरङ्ग); त्रिपुरा की उपासना पर यह एक विशिष्ट ग्रन्थ है। ३. सपर्याक्रमकल्पवल्ली (१–५ स्तबक); यह श्रीश्रीदुर्गासप्तशतीसम्मत देवी की उपासना के विषय में है। ४. शिवार्चनचन्द्रिका (१ से ४६ परिच्छेद); यह अति-विशाल ग्रन्थ है। ५. सौभाग्यसुभगोदय।[1] श्रीनिवासभट्ट के पुत्र का नाम **जगन्निवास गोस्वामी** था। वे भी तान्त्रिक थे। भारतवर्ष के बहुत-से राजा इनके भक्त थे, 'यस्याज्ञावशवर्त्तिनः क्षितिभुजः के तेऽभवन् भूरिशः' ऐसा **सिंहसिद्धान्तसिन्धु** में कहा गया है। उनके भक्त राजाओं में बूंदी के **देवीसिंह** भी थे। जगन्निवास के ज्येष्ठ पुत्र का नाम **शिवानन्द गोस्वामी** था, जिन्होंने पूर्वोक्त राजा देवीसिंह के अनुरोध से सिंहसिद्धान्तसिन्धु नामक ग्रन्थ की रचना की थी। शिवानन्द श्रीविद्या के उपासक थे। अनुमान किया जाता है कि उन्होंने लक्ष्मीनारायणा-र्चाकौमुदी, कुलप्रदीप प्रभृति ग्रन्थों का निर्माण किया था। शिवानन्द के छोटे भाई का नाम जनार्दन था। उन्होंने अपने पितामह की कृति शिवार्चनचन्द्रिका के आधार पर मन्त्रचन्द्रिका नामक ग्रन्थ की रचना की थी।[2]

लौगाक्षिभास्कर ने मीमांसाशास्त्र में अर्थसंग्रह नाम का एक ग्रन्थ लिखकर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उनके ग्रन्थ पर **कौमुदी** नाम की एक व्याख्या **रामेश्वर** नामक किसी आचार्य ने लिखी थी। ये रामेश्वर **शिवयोगी भिक्षु** उपाधि से विभूषित थे। इनके गुरु **सदाशिवेन्द्रसरस्वती** थे और परम गुरु थे परमहंस परिव्राजकाचार्य **गोपालेन्द्रसरस्वती**। रामेश्वर नियम से काशी-निवास करते थे। उन्होंने काशी के विषय में लिखा है—

---

१. द्रष्टव्य : Ulwar Catalogue, सं० २४४५।

२. द्रष्टव्य : Indian Historical Quarterly, Vol. 15, पृ० १३६।

या काशी निखिलगुरोर्ममेश्वरस्य
प्राणान्ते सकलशिवप्रदा प्रसिद्धा।
यत्राहं सकलसुरेशलब्धतत्त्वः
तत्रेयं सुजनहितप्रदा निबद्धा॥

फ्रेञ्च-पर्यटक बर्नियर भारत-पर्यटन करते हुए काशी में आये थे। उन्होंने काशी के विषय में जो कुछ लिखा है, उससे प्रतीत होता है कि काशी नगरी में उस समय बहुत-से विद्यालय थे, जिनमें ब्राह्मण और भक्त पठन-पाठन में निरत रहते थे एवं अध्यापक अपने घरों में अथवा भक्त धनी लोगों के उद्यानों में अध्यापन करते थे। प्रत्येक अध्यापक के निकट प्रायः ४ से १५ तक विद्यार्थी रहते थे, ये सब विद्यार्थी १०-१५ वर्ष गुरु के समीप रहकर विद्याभ्यास करते थे। ये पहले व्याकरण पढ़ते थे, तदनन्तर पुराण, उसके बाद दर्शन, आयुर्वेद, ज्यौतिष प्रभृति का भी अध्ययन-अध्यापन होता था। सन् १६६७ ई० में बर्नियर ने कवीन्द्राचार्य से भेंट की थी और उनका विशाल पुस्तकालय भी देखा था।

कवीन्द्राचार्यसरस्वती की मृत्यु १६७० ई० के आसपास हुई थी? उनके बनाये हुए ग्रन्थों के नाम यों हैं—१. कवीन्द्रकल्पद्रुम; २. दशकुमारचरित की टीका; ३. योगभास्करयोग; ४. शतपथब्राह्मण का भाष्य; ५. हंसदूतकाव्य तथा ६. कवीन्द्र-काव्यलता (भाषा में)। किवदन्ती है कि यह ग्रन्थ उन्होंने शाहजहाँ के आदेश से लिखा था। इसमें दाराशिकोह और बेगम साहिबा की प्रशस्ति है। ७. योगवासिष्ठ-सार (भाषा में); इसका रचनाकाल १७१७ वि० या १६६० ई० है तथा ८. समरसार (भाषा में)। कवीन्द्राचार्य के पूर्वपुरुषों का आदिनिवास गोदावरी-तट पर था। वेदाङ्ग और अन्य शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए वे (कवीन्द्राचार्य) काशी आये थे। निजामशाही राज्य के ऊपर उस समय सम्राट् शाहजहाँ का अधिकार हो गया था, इसीलिए उन्होंने स्वस्थान का त्याग कर दिया था। काशी आकर वे वरुणातट पर किसी बगीचे में रहते थे, जिसकी प्रसिद्धि **वेदान्ती का बाग** नाम से हुई। उस समय गया, काशी तथा प्रयाग इस त्रिस्थली के यात्रियों के ऊपर मुगल-सम्राट् ने कर लगा दिया था। काशी के तत्कालीन पण्डितों ने उक्त कर से मुक्त होने के लिए कवीन्द्राचार्य को नायक बनाकर एक प्रतिनिधि-मण्डल दिल्ली भेजा था। कवीन्द्राचार्य के ओजस्वी भाषण से सम्राट् इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उसी समय कर लेना बन्द कर दिया। केवल इतना ही नहीं, कवीन्द्राचार्य को **सर्वविद्यानिधान** उपाधि प्रदान की और उनके लिए प्रतिवर्ष २०००) की पेन्शन की भी व्यवस्था कर दी। जब वे दिल्ली से काशी लौट आये, तब वहाँ के विद्वानों ने उन्हें 'कवीन्द्र' उपाधियुक्त मानपत्र दिया। सुना जाता है कि तत्कालीन यवन-इतिहास-लेखकों ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया। इस समय से मुगल-दरबार में भी कवीन्द्र का प्रवेश हो गया। यह भी प्रसिद्धि है कि दाराशिकोह की रुकी हुई पेन्शन पुनः चालू कराने के लिए कवीन्द्राचार्य ने प्रयत्न किया था।

अठारहवीं शताब्दी

महीधर का संक्षिप्त विवरण पहले दिया जा चुका है। उनके पुत्र का नाम कल्याण था। कल्याण के दो पुत्र थे—**राम** और **लक्ष्मण**। लक्ष्मण का समय संवत् १६९८ वि० या १६४२ ई० है। लक्ष्मण के पुत्र का नाम **वीरेश्वर** और उनके पुत्र का नाम **वेणीदत्त** था। वेणीदत्त १७वीं शती के तृतीय पाद में या १८वीं शती के प्रथम पाद में आविर्भूत हुए थे। **तर्कवागीश भट्टाचार्य** के नाम से उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उनके स्वरचित ग्रन्थों के नाम यों हैं—१. अलङ्कारचन्द्रोदय (१ से ६ उल्लास); सरस्वती-भवन में संगृहीत महीधर के पारिवारिक ग्रन्थ-संग्रह में इसे हमने देखा था। २. पदार्थमण्डन (पत्र-सं० १३ से अन्त तक); इसे भी उक्त संग्रह में हमने देखा था। यह रघुनाथशिरोमणि के पदार्थखण्डन के प्रतिवाद में रचा गया था। इसका रचना-काल १७५१ वि० (इन्दुबाणोदधि-ब्रह्ममिते संवत्सरे) है। ३. मुक्तिविमर्श (पत्र-सं० १–३७); इसका रचनाकाल १७५० वि० या १६९३ ई० है। ४. तर्कधुन्धध्वंसन (पत्र-सं० १ से ८); इसमें नैयायिकसम्मत सामान्य लक्षणा का खण्डन किया गया है। इसका रचना-काल १७५० वि० या १६९३ ई० है। ग्रन्थकार का अपने हाथ का लिखा हुआ यह ग्रन्थ सरस्वती-भवन में है। ५. परामर्श-विमर्श (पत्र-सं० ५); इसका भी रचना-काल १७५० वि० या १६९३ ई० है। यह भी ग्रन्थकार का स्वहस्तलिखित संस्करण सरस्वती-भवन में है। ६. भेदजयश्री; इसमें मध्व-सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से अद्वैतसिद्धान्त का खण्डन किया गया है। यह सरस्वती-भवन से प्रकाशित हो गया है। वेणीदत्त के पुत्र का नाम था **भट्ट कृष्णदत्त**। वेणीदत्त के ग्रन्थों का रचना-काल १७२७ वि० से १७७२ वि० तक देखने में आता है, अर्थात् १६७१ ई० से १७१६ ई० तक। यही उनका समय भी समझना चाहिए।

१८वीं शती में काशीस्थ पण्डित-मण्डली में **प्रेमनिधि पन्त** का नाम अपने विभाग में अत्यन्त प्रसिद्ध था। वे कूर्माचलीय **उमापति** पन्त के पुत्र थे। इनका गोत्र भारद्वाज था। **दिवाकर भारद्वाज** इनके गुरु थे। इसका उन्होंने स्वरचित **कार्त्तवीर्यसपर्या** में उल्लेख किया है। उनके विरचित ग्रन्थ ये हैं: १. **धर्मशास्त्र** में—(क) प्रायश्चित्तप्रदीप; रचनाकाल १६७५ शकाब्द अथवा १७५३ ई०; (ख) घृतदानपद्धति या घृतदानरत्न; (ग) प्रयोगरत्न और (घ) समयाराम (संस्कृत-विश्वविद्यालय, हस्तलिखित ग्रन्थसूची, सं० १३९९५)। २. **तन्त्रशास्त्र** में—(क) शारदातिलक की टीका शब्दार्थचिन्तामणि; (ख) शिवताण्डवटीका मल्लादर्श; इस टीका में नीलकण्ठकृत शिवताण्डव की टीका की तीव्र समालोचना की गई है। महाराजाधिराज **श्रीमहलवर्मदेव** के आदेश से इस टीका-ग्रन्थ का निर्माण किया गया था। श्रीमहल के पिता का नाम **घनश्याम** था। इनके पिता **शाहमल्ल** उत्तरप्रदेश के गण्डकीतीर-स्थित किसी स्थान के अधिपति थे। भट्टोजि-दीक्षित ने एक छोटे ग्रन्थ द्वारा इस तन्त्र का अप्रामाण्य प्रदर्शित किया था।

प्रेमनिधि ने उनकी युक्तियों का खण्डन किया है। इन्होंने तन्त्रों का, श्रुतिमूलकत्व न मानकर, स्वतःप्रामाण्य स्वीकार किया है। (ग) कार्त्तवीर्यसपर्या; (घ) नित्याप्रयोगरत्नाकर तथा (ङ) पृथ्वीप्रेमोदय; इसका रचनाकाल १६५६ शकाब्द या १७३७ ई० है। तन्त्रराज की एक टीका **सुदर्शना** प्रेमनिधि की रचना के रूप में विद्वत्समाज में प्रसिद्ध है। यद्यपि ग्रन्थ में वह प्रेमनिधि की तृतीया पत्नी **प्राणमञ्जरी**-विरचित कही गई है, तथापि उसकी रचना में प्रेमनिधि का हाथ अवश्य रहा होगा, ऐसा अनुमान बहुत लोग करते हैं। ३. **भक्तिशास्त्र में**—भक्तिरङ्गिणी; मल्लादर्श में इस ग्रन्थ का उल्लेख है।

खण्डदेव का विवरण पहले दिया जा चुका है। उनके शिष्य **शम्भुभट्ट** के विषय में भी कुछ कहा जा चुका है। इन शम्भुभट्ट की उपाधि थी कविमण्डन। इनके पिता का नाम **बालकृष्ण भट्ट** था। प्रतीत होता है कि ये संन्यास-ग्रहण के उपरान्त **शङ्करानन्द** के नाम से परिचित हुए। ये काशी में ही निवास करते थे। पूर्वाश्रम में इन्होंने मीमांसा तथा धर्मशास्त्र में कई ग्रन्थों की रचना की थी। मीमांसा में इनकी रचना **प्रभावली** के नाम से प्रसिद्ध है। यह उनके गुरु **खण्डदेव**-विरचित भाट्टदीपिका की टीका है। इसका रचना-काल १७०८ ई० है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन बम्बई से हुआ है। धर्मशास्त्र में इन्होंने निम्नलिखित तीन ग्रन्थों की रचना की थी—(क) कालतत्त्वविवेचनसारसंग्रह; यह रघुनाथभट्ट के ग्रन्थ के आधार पर है। (ख) त्रिंशच्छ्लोकीनिर्णयसारोद्धार; इसमें निर्णय-सिन्धु तथा स्मृतिकौस्तुभ का उल्लेख है। (ग) पातयज्ञप्रयोग। संन्यास-ग्रहण करने के बाद इन्होंने शङ्करानन्द नाम से तन्त्रशास्त्र में **सुन्दरीमहोदय** नाम का एक अपूर्व ग्रन्थ रचा था।[1]

गङ्गाराम जड़े—भारद्वाजवंशीय दिनकरभट्ट का विवरण पहले दिया गया है। दिनकरभट्ट की कन्या का विवाह काशी-निवासी **नारायण जड़े** के साथ हुआ था। इन नारायण के पुत्र का नाम था गङ्गाराम जड़े। ये दिनकरभट्ट के दौहित्र थे। इनका ग्रन्थरचना काल स्थूल दृष्टि से १७४० ई० से १७७४ ई० तक माना जा सकता है। ये अच्छे नैयायिक थे और रसशास्त्र के भी विद्वान् थे। इनके गुरु थे नीलकण्ठ-भट्ट। ये कौन नीलकण्ठभट्ट थे, यह कहना कठिन है। परन्तु, ये शङ्करभट्ट के पुत्र मयूखकर्त्ता नीलकण्ठभट्ट हों, ऐसी संभावना कम है। इन्होंने अलङ्कारशास्त्र में भानुदत्त-कृत रसतरङ्गिणी की **नौका** नाम की व्याख्या की रचना की थी। इसका रचनाकाल है १७९९ वि०, अर्थात् १७४३ ई०, उसी प्रकार रसमीमांसा और उसकी टीका का रचनाकाल १८०८ वि०, अर्थात् १७५२ ई० है। इनका सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है—न्याय-वैशेषिक में तर्कामृत पर **तर्कामृतचषक**[2] नाम की

१. द्रष्टव्य : India office Catalogue, पृ० ९००।

२. तर्कामृतचषक-टीका में लिखा है : 'दिनकरकरकृतपरामर्शम्', अर्थात् यह ग्रन्थ उनके मातामह दिनकर द्वारा शोधित हुआ था, यह शोधित ग्रन्थ सरस्वती-भवन में है। इसके शोधन का काल है संवत् १८१८, अर्थात् १७६१ ई०।

व्याख्या तथा उसपर **तात्पर्य** नामक टीका की रचना। यह ग्रन्थ १८३० वि०, अर्थात् १७७४ ई० में रचा गया था। एक प्रकार से यदि कहा जाय, तो यही इनका मुख्य और अन्तिम ग्रन्थ है। इनका प्रथम ग्रन्थ **मणिमाला** के नाम से प्रसिद्ध था, परन्तु वह इस समय मिलता नहीं है। इन्होंने **गैरिकसूत्र** नाम से एक छोटा-सा ग्रन्थ लिखा था, जिसका मुद्रण और प्रकाशन 'सारस्वती सुषमा' में हो चुका है। दिनकरभट्ट गङ्गाराम जड़े के मातामह थे, परन्तु मातामह के ग्रन्थ **मुक्तावलीप्रकाश** (दिनकरी) का भी खण्डन करने में इन्होंने संकोच नहीं किया। **दिनकरी-खण्डन** के नाम से उनकी यह रचना प्रसिद्ध है।[1]

१८वीं शती में काशी में पौराणिक भक्त-मण्डली में सदानन्दव्यास का नाम प्रसिद्ध था। ये काशी में रहते थे[2]। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इनका जन्म पंजाब (अब पश्चिमी पंजाब, पाकिस्तान) के रावलपिण्डी जिलान्तर्गत कुन्त्रीला ग्राम में १७९५ वि० के आसपास हुआ था। बाल्यावस्था में ही प्रचुर विद्या उपार्जन कर कथा-वाचन से अपनी आजीविका चलाते थे। ये बाबा रामदयालु नामक उदासीन साधु के साथ काशी आये। उक्त साधु ने अपने भक्त से उपहार रूप में प्राप्त प्रचुर धन उन्हें देकर आजीविका की चिन्ता से मुक्त कर दिया।

श्रद्धालु भक्त जनों के अनुरोध से ये काशी में बालूजी का फर्श नामक स्थान पर कथा बांचते रहे। व्यासजी की दो कन्याएँ थीं। उनमें से एक का विवाह उन्होंने धनपति नामक ब्राह्मण-बालक से कर दिया एवं उसे पढ़ा-लिखाकर पण्डित बना दिया। उसने भी कई ग्रन्थों की रचना की। दूसरी कन्या का पति संस्कृतज्ञ नहीं था। वह व्यावहारिक यवनभाषा का ज्ञानार्जन कर निर्वाह करता था।

धनपति का अल्पायु में देहावसान हो गया था, अतएव उनकी पुत्री उनकी अनुमति लेकर पति के साथ सती हो गई।

तदनन्तर व्यासजी ने मणिकर्णिका के निकट शिव-मन्दिर का निर्माण कराया था जिसपर कई श्लोक खुदे हैं, उनमें एक है—

सोऽयं चारुगिरीशमौलितटिनीतीरे शके वैक्रमे
रामेषुद्विपभूमिते १८५३ सितदले, मासे नभस्यं श्रिते।
पञ्चम्यां सगुरौ वृषोदय इमं श्रीमत्समुद्यत्सदः-
शोभासंलसदैन्दुशेखरशुभप्रासादमासदयन्॥

---

१. गङ्गाराम के सम्बन्ध में द्रष्टव्य Journal of U. P. Historical society, खण्ड २, पृ० १४८ से म० म० गोपीनाथ कविराज-लिखित लेख; Journal of Bombay University, Vol. XI, नूतन सीरीज भाग २, पृ० ८४—८९, जी० बी० देवस्थली-लिखित लेख; Poona Orientalist, खं० ७, पृ० १८७—१९३ में प्रकाशित जी० बी० देवस्थली-लिखित सिद्धान्तमुक्तावली-प्रकाश-विषयक लेख तथा सारस्वती-सुषमा, खं० १२, सं० ३-४ में प्रकाशित ब्रजवल्लभद्विवेद-लिखित गैरिकसूत्र-प्रस्तावना।

२. द्रष्टव्य : Hall, पृ० १२०।

अपनी सब सम्पत्ति गुणी ब्राह्मण को देकर संन्यास आश्रम ग्रहण किया।

व्यासजी के बनाये ग्रन्थ : १. वेदान्त में—(क) अद्वैतसिद्धिसिद्धान्तसार (सटीक); (ख) प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि[1] (सटीक); (ग) स्वरूपनिर्णय[2], (घ) दशोपनिषत्सार (सटीक); (ङ) तत्त्वविवेकटीका[3]। २. पुराणेतिहास में—(क) गीताभावप्रकाश[4] (गीता की पद्यमय टीका) रचनाकाल १८३७ वि०, (ख) महाभारततात्पर्यप्रकाश[5] (ग) रामायणतात्पर्यप्रकाश[6], (घ) महाभारतसारोद्धार तथा (ङ) शङ्करदिग्विजय-सार[7]; रचना-काल १८३६ वि०। इसपर उनके जामाता धनपतिमिश्र की टीका है।

१८वीं शताब्दी के आरम्भ में विश्वेश्वर पण्डित का काशी में आविर्भाव हुआ। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर पाण्डेय था। उनका निवासस्थान कूर्माचल की राजधानी अल्मोड़ा से ७ मील उत्तर पाटिया ग्राम था। अधिक अवस्था बीतने पर भी उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। विरक्तिवश वे सपत्नीक काशी चले आये। उन्होंने तीव्रतम तपस्या से भूतभावन भगवान् विश्वेश्वर को प्रसन्न कर प्रसाद रूप में विश्वेश्वर पुत्र को प्राप्त किया। विश्वेश्वर बड़े कुशाग्रमति थे। अल्प वय में उन्होंने व्याकरण, मीमांसा, न्याय, अलङ्कार आदि शास्त्रों में प्रौढ़ि प्राप्त कर विविध ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनके बनाये ग्रन्थ हैं : १ काव्य में—(क) आर्यासप्तशती (सटीक); (ख) रुक्मिणीपरिणय; (ग) नैषधीय महाकाव्य की भावप्रदीप नामक टीका, (घ) मन्दारमञ्जरी (गद्यकाव्य); २. अलङ्कार में—(क) अलङ्कारकौस्तुभ; (ख) अलङ्कारकुलप्रदीप; (ग) अलङ्कारमञ्जरी तथा (घ) रसमञ्जरीटीका रसचन्द्रिका। ३. व्याकरण में—सिद्धान्तसुधानिधि। न्याय में—तर्ककौतूहल[8]।

अलङ्कार शास्त्र में इनका अलङ्कारकौस्तुभ पण्डितराज के रसगङ्गाधर का समकक्ष माना जाता है। अलङ्कार कौस्तुभ में कई स्थलों में इन्होंने पण्डितराज जगन्नाथ का नामोल्लेख किया है इससे सिद्ध है कि ये पण्डितराज से अर्वाचीन थे। व्याकरण-ग्रन्थ सिद्धान्तसुधानिधि में भट्टोजिदीक्षितकृत शब्दकौस्तुभ आदि ग्रन्थों के बहुत उद्धरण दिये हैं, किन्तु हरिदीक्षित के शब्दरत्न का कहीं भी उद्धरण नहीं दिया है। इससे कोई कोई इन्हें भट्टोजिदीक्षित से तो निःसन्देह अर्वाचीन परन्तु उनके वंशधर हरिदीक्षित से प्राचीन मानते हैं।

उपर्युक्त अनेक विशाल ग्रन्थों का निर्माण कर अल्प (३२ वर्ष) वय में इनका देहावसान हो गया था।

---

१. वेदान्त में (क) और (ख) ये दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं (क) चौखम्बासंस्कृत-सीरीज में और (ख) अच्युतग्रन्थमाला में (दो भागों में)।
२. द्रष्टव्य : वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का कैटलाग, सं० २८५९२।
३. द्रष्टव्य : Catalogus Catalogorum Vol I, p. 690.
४. निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित।
५. द्रष्टव्य : वाराणसेय सं० वि० कैटलाग, सं० १५२३२, १५२३३।
६. द्रष्टव्य : Ulwar Catalogue, Ext. 312.
७. द्रष्टव्य : राजेन्द्रलाल मित्र-कृत कैटलाग, सं० १७३५।
८. इनकी अन्य कृतियों के सम्बन्ध में द्रष्टव्य : 'मन्दारमञ्जरी' (१९३९ ई० काशी संस्करण) की भूमिका।

१८वीं शती के प्रथम पाद में ही पण्डित **नागोजिभट्ट** या **नागेशभट्ट काले** का नाम वैयाकरण तथा दार्शनिक समाज में विशेष प्रसिद्ध हो गया था। इनके पिता का नाम **शिवभट्ट** और माता का नाम **सती** था। ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके आश्रयदाता राजा का नाम था **राम**, जो शृङ्गबेरपुर के अधिष्ठाता थे। किसी-किसी का मत है कि यह स्थान इलाहाबाद के निकट गङ्गातीर पर था। नागेश यद्यपि सब शास्त्रों में सुपण्डित थे, फिर भी व्याकरण ही उनका मुख्य विषय था। भट्टोजिदीक्षित के पौत्र और वीरेश्वर के पुत्र **हरिदीक्षित** ने इन्हें पातञ्जल महाभाष्य पढ़ाया था। प्रसिद्धि है कि नागेश ने शब्दरत्न की रचना कर गुरू के नाम से उसको प्रचारित किया था। यद्यपि प्रौढ़मनोरमा की टीका में हरि-दीक्षित ने शब्दरत्न का स्वकृति के रूप में उल्लेख किया है, तथापि उन्होंने उसी ग्रन्थ में शब्देन्दुशेखर का अपने छात्र की रचना कहकर परिचय दिया है।

नागोजिभट्ट की मुख्य रचनाएँ हैं : १. **व्याकरण में**—(क) उद्योत; यह कैयटकृत महाभाष्यप्रदीप की टीका है। (ख) परिभाषेन्दुशेखर; (ग) वैयाकरण-सिद्धान्तमञ्जूषा (बृहत् तथा लघु) और परमलघुमञ्जूषा नागेश की रचना है या नहीं, इसपर किसी-किसी को सन्देह है। (घ) शब्देन्दुशेखर (बृहत् तथा लघु); (ङ) शब्दकौस्तुभ की टीका विषमी तथा (च) सिद्धान्तकौमुदी की टीका। २. **धर्मशास्त्र में**—(क) तीर्थेन्दुशेखर;[1] (ख) आचारेन्दुशेखर; (ग) तिथीन्दु-शेखर; (घ) श्राद्धेन्दुशेखर; (ङ) प्रायश्चित्तेन्दुशेखर या प्रायश्चित्तसारसंग्रह;[2] (च) अशौचनिर्णय; (छ) तिथिनिर्णय; (ज) सापिण्डीमञ्जरी; (झ) सापिण्डय-दीपिका अथवा सापिण्ड्यनिर्णय या सापिण्डयप्रदीप; (ञ) गागाभट्ट-कृत कायस्थ-धर्मप्रदीप की टीका; (ट) गोत्रप्रवरनिर्णय तथा (ठ) व्रात्यप्रायश्चित्तनिर्णय।[3] ३. **अलङ्कारशास्त्र में**—(क) गोविन्द-टक्कुरकृत काव्यप्रदीप की टीका उद्योत; (ख) कुवलयानन्द की टीका अलङ्कारसुधा; (ग) रसगङ्गाधर की टीका गुरुमर्म-प्रकाश; (घ) रसतरङ्गिणी-टीका (रचनाकाल १७१३ ई०) तथा (ङ) रसमञ्जरी-टीका प्रकाश। ४. **इतिहास-पुराण में**—(क) वाल्मीकि-रामायण की टीका तिलक; (ख) अध्यात्मरामायण की टीका; यह टीका उनके आश्रयदाता के नाम से प्रसिद्ध है।[3] (ग) दुर्गासप्तशती की टीका। ५. **काव्य में**—(क) गीतगोविन्दटीका तथा (ख) सुधालहरी-टीका। ६. **सांख्ययोग में**—(क) सांख्यसूत्र-टीका तथा (ख) योगसूत्र-टीका।

जयपुरराज सवाई जयसिंह ने १७१४ ई० में अश्वमेध[1] यज्ञ किया था।

---

१. द्रष्टव्य : सं० वि० विद्यालय-कैटलाग, सं० ११९३५।

२. द्रष्टव्य : वेलवेलकरकृत Systems of Sanskrit Grammar, पृ० १७।

३. (क) इस अश्वमेध के विषय में द्रष्टव्य : P. K. Gode लिखित लेख, Journal of Indian History, Vol. 15, पृ० ३६४—६७। (ख) The Ashwamedha Performed by Sawai Jayasingh of Amber (1699-1744 A. C.) Poona Orientalist, Vol. 2, P. 166—180.

उस यज्ञ में उन्होंने नागेश का आदर के साथ आह्वान किया था; किन्तु क्षेत्र-संन्यास लेने के कारण वे काशी-त्याग के लिए प्रस्तुत नहीं हुए। पण्डित नागेश के न्यायशास्त्र के गुरु पं० रामराम भट्टाचार्य थे।

नागेश के मुख्य शिष्य का नाम **वैद्यनाथ पायगुण्डे** था। इनके पिता का नाम था **महादेवभट्ट**। ये मुद्गलगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पुत्र का नाम **बालम्भट्ट** या **बालकृष्णभट्ट** था। वैद्यनाथ-विरचित व्याकरण-ग्रन्थों के नाम यों हैं—१. शब्दकौस्तुभ की टीका प्रभा; २. शब्दरत्न की टीका भावप्रकाशिका; ३. उद्योत की टीका छाया; ४. लघुशब्देन्दुशेखर की टीका चिदस्थिमाला; ५. परिभाषेन्दुशेखर की टीका गदा और काशिका; ६. मञ्जूषा की टीका कला; ७. लघुशब्दरत्न की टीका तथा ८. र प्रत्यय का खण्डन।[1] किसी-किसी का मत है कि ये सब ग्रन्थ वैद्यनाथ-निर्मित नहीं है; किन्तु सभी उनके पुत्र बालम्भट्ट-विरचित हैं और वैद्यनाथ के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं।

बालम्भट्ट पायगुण्डे का नाम धर्मशास्त्र के इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन्होंने मिताक्षरा के ऊपर लक्ष्मी नामक टीका की रचना की थी। यह बालम्भट्टी के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। यह बनारस-सम्प्रदाय के धर्मशास्त्रियों का उपजीव्य मुख्य ग्रन्थ है। इसके आचारखण्ड और व्यवहारखण्ड का प्रकाशन हो चुका है। प्रायश्चित्तखण्ड का प्रकाशन अभी देखने में नहीं आया। रामनगर-स्थित काशीराज के ग्रन्थालय में इसके आचारखण्ड (रचना-काल १७७४ ई०) की एक प्रति है। अनुमान किया जाता है कि बालम्भट्ट की माता का नाम **लक्ष्मी** था। उन्हीं के नाम से टीका का नाम भी ग्रन्थकार ने **लक्ष्मी**[2] रखा। २. धर्मशास्त्रसंग्रह; यह ग्रन्थ Colebrooke के अनुरोध से लिखा गया था १८०० ई० में। ३. जीवत्पितृकर्तव्यनिर्णय तथा ४. उपाकृतितत्त्व।

बालम्भट्ट ने ९० वर्ष की अवस्था में, सन् १८३० ई० में देहत्याग किया था। बालम्भट्ट के शिष्य का नाम **मनुदेव** या **गोपाल** था। इन्होंने **लघुभूषणकान्ति** नामकी वैयाकरणभूषणसार की टीका रची थी।

---

१. द्रष्टव्य : Deccan College Catalogue, पृ० १०१।

२. पं० श्रीरामशङ्कर भट्टाचार्य ने 'श्रीमती लक्ष्मी देवी' नाम से एक लेख २२ दिसम्बर, १९५७ ई०के दैनिक 'आज' (वाराणसी) के रविवासरीय अंक में प्रकाशित किया था। इस लेख में कहा गया है कि यह लक्ष्मी देवी स्वयं ही बालम्भट्टी टीका की रचयित्री थीं; क्योंकि ग्रन्थ की पुष्पिका में लक्ष्मीकृत शब्द दिखाई देता है। लक्ष्मी वैद्यनाथ की धर्मपत्नी तथा श्रीबालम्भट्ट की माता थीं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। लक्ष्मी देवी ने आचारखण्ड की टीका में मञ्जूषाकृत् नागेश का 'गुरुचरण' कहकर और उनके प्रायश्चित्तनिर्णय का गुरुकृत कहकर उल्लेख किया है। प्रतीत होता है कि पति के गुरु को ही उन्होंने अपना गुरु मान लिया हो। पक्षान्तर में कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि वैद्यनाथ ने ही मिताक्षरा पर टीका लिखकर अपनी पत्नी लक्ष्मी के नाम से उसे प्रकाशित किया। इस प्रसङ्ग में यह भी उल्लेख्य है कि माधवाचार्य-कृत कालनिर्णय की टीका भी लक्ष्मी नाम से प्रसिद्ध है। दोनों स्थलों में रचयिता या रचयित्री एक ही है।—ले०

इस शती में **रत्नाकरभट्ट** नाम के एक पण्डित ने काशी में कुछ प्रसिद्धि प्राप्त की थी। ये रत्नाकरभट्ट शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण और देवभट्ट महाशब्द नामक पण्डित के पुत्र थे, जिनके हस्ताक्षर प्रसिद्ध १६५७ ई० वाले व्यवस्था-पत्र पर हैं। इन देवभट्ट ने जयपुर के राजा जयसिंह के आश्रय में रहकर जयसिंह-कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ की १७७० वि० अथवा १७१३ ई० में रचना की थी: **शाके विक्रमपार्थिवस्य शुभदे व्योमर्षिसप्तेन्दुयुग्वर्षे**। जयसिंह के पिता का नाम **कृष्णसिंह** और पितामह का नाम **रामसिंह** था। ये रामसिंह बड़े दाता थे। रामसिंह के पिता का नाम जयसिंह था। इनके विषय में लिखा है:

येन श्रीजयसिंहेन दिल्लीन्द्रपदलिप्सवः।
शिवप्रभृतिभूपाला वशं नीताः स्वतेजसा॥

इन जयसिंह के पिता महासिंह थे। महासिंह के पिता जगत्सिंह और जगत्सिंह के पिता मानसिंह थे, जो प्रतिदिन अश्व, गज आदि दान करते थे और जिन्होंने बहुत-से राजाओं को पराजित किया था। मानसिंह के पूर्वपुरुष परम वैष्णव पृथ्वीराज थे। पृथ्वीराज के अतीव पूर्वपुरुष बृहद्बल थे, जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में निहत हुए थे। ये बृहद्बल राम के पुत्र कुश के वंशधर थे। ये सब बातें जयसिंहकल्पद्रुम में लिखी गई हैं। जयसिंह ने रत्नाकरभट्ट को **'तिथेः कृत्यं कुरुत'** कहकर तिथिनिर्णयग्रंथ की रचना करने का आदेश किया था। इन रत्नाकर-भट्ट ने अवन्तीपुरी में ज्योतिष्टोम यज्ञ का तथा विजयपुर में वाजपेय यज्ञ का अनु-ष्ठान किया था। ३६ दिनों में समाप्त होनेवाला पौण्डरीक याग तथा सर्वतोमुख यज्ञ भी उन्होंने किया था। रत्नाकर के भाई का नाम प्रभाकर था।[१]

१८वीं शती में सकल विद्याओं में निष्णात एक और महान् विद्वान् काशी में निवास करते थे। इनका नाम था **भास्कारराय**। **भास्कररायदीक्षित** या **भासुरानन्द** अथवा **भास्करानन्दनाथ** नाम से भी ये परिचित थे। इनके पिता का नाम **गम्भीररायदीक्षित** और माता का नाम **कोनाम्बिका** था। ये **नृसिंहाध्वरीन्द्र** के शिष्य थे। शैशवावस्था में ही पिता द्वारा उपदिष्ट सारस्वत मन्त्र की उपासना से सभी विद्याएँ और कलाएँ अनायास ही इनके आयत्त हो गईं। इनके सकल शास्त्रों में अगाध पाण्डित्य के सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

भृण्वन्नेत्रस्य वीप्सा खलु पदविषये पश्यदङ्घ्रेर्विभाषा
न्याये नव्येऽप्यनव्येऽप्यथ परिणतिजेमिनेर्वाक्यजाते।
छन्दोऽशे पिङ्गलोऽयं श्रुतिशिखरमते सत्यवत्यास्तनूज-
स्तन्त्रेष्वेष स्वतन्त्रा गिरिशगुणनिका कीर्त्यते कीर्त्तनीयः॥[२]

---

१. द्रष्टव्य: Poona Orientalist, Vol. 2, पृ० १७१-१७२।

२. द्रष्टव्य: भास्करविलास, १, १०।

इनका मूल निवास गुर्जरदेश था। विद्याध्ययन तथा दीक्षाप्राप्ति के अनन्तर अपने असाधारण वैदुष्य तथा गुणों से तत्-तत् प्रदेशों की पण्डित-मण्डली को सन्तुष्ट करते और उनसे सम्मानित होते हुए इन्होंने सेतुबन्ध से हिमालय तक तथा कामरूप से कश्मीर तक सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। तदनन्तर स्थायी रूप से निवास करने के लिए काशी आये। काशी के विद्वानों ने भी इनकी प्रगाढ़ विद्वत्ता तथा अपूर्व शास्त्रार्थ-विचारकौशल से प्रसन्न होकर इनका खूब सम्मान किया। ये त्रिपुरासुन्दरी के उपासक और महान् तान्त्रिक थे।

इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं: १. **उपनिषद् के विषय में**—(क) काठकोपनिषद्-भाष्य; (ख) केनोपनिषद्भाष्य; (ग) जाबालोपनिषद्भाष्य; (घ) त्रिपुरोपनिषद्भाष्य; (ङ) महोपनिषद्भाष्य; (च) मुण्डकोपनिषद्भाष्य; (छ) भावनोपनिषद्भाष्य; (ज) अथर्वशिरउपनिषद्भाष्य; (झ) कौलोपनिषद्भाष्य; तथा (ञ) भावनोपनिषत्प्रयोगविधि। २. **वेदान्त में**—(क) आत्मबोधव्याख्या; (ख) अवधूत-गीताव्याख्या; (ग) अष्टावक्रगीताव्याख्या तथा (घ) ईश्वरगीताव्याख्या। ३. **तन्त्र में**—(क) गुप्तवती (दुर्गामाहात्म्यव्याख्या); (ख) चण्डीस्तवमन्त्रपरिच्छेद; (ग) त्रिपुरामहिम्नः स्तोत्र की टीका; (घ) नवरत्नमाला और उसकी व्याख्या; (ङ) मन्त्ररत्नावली; (च) मन्त्रविभाग; (छ) ललितार्चनविधि; (ज) वरिवस्यारहस्य; (झ) वरिवस्याप्रकाश; (ञ) श्रीविद्यार्चनचन्द्रिका; (ट) सेतुबन्ध (वामकेश्वर-तन्त्रान्तर्गत नित्याषोडशी की व्याख्या); (ठ) सौभाग्यभास्कर (ललितासहस्रनाम-व्याख्या); इसका रचनाकाल १७२८ ई० है। (ड) शिवनामकल्पलतालवाल तथा (ढ) सौभाग्यचन्द्रोदय। ४. **व्याकरण में**—(क) शब्दकौस्तुभदूषण तथा (ख) सिद्धान्तकौमुदीविलास। ५. **छन्द में**—(क) अभिनववृत्तरत्नाकर; (ख) वृत्त-चन्द्रोदय तथा (ग) वेदाङ्गछन्दःसूत्रप्रकाश। ६. **धर्मशास्त्र में**—सहभोजनसूत्रव्याख्या। इनके अतिरिक्त कुण्डभास्कर, श्रीसूक्तभाष्य, तृचभास्कर, एकादशीनिर्णय, कौलकल्पसूत्र-वृत्ति (रत्नालोक), मालामन्त्रोद्धार, शिवाष्टोत्तरशतनामव्याख्या आदि और भी अनेक ग्रन्थ इनके नाम से प्रसिद्ध तत्-तत् स्थलों में दिखाई देते हैं।[1] इन ग्रन्थों में कतिपय विशिष्ट ग्रन्थ मुद्रित भी हो गये हैं।

भास्करराय के शिष्य **उमानन्दनाथ** ने १७४२ ई० में **हृदयामृत** नामक तन्त्र-ग्रन्थ का निर्माण किया था। इनका दूसरा ग्रन्थ **नित्योत्सवनिबंध** है। इसका रचना-काल कल्यब्द ४८४६ अर्थात् १७४५ ई० है। ये भी तन्त्रशास्त्र में निष्णात थे। इनका पूर्वाश्रम का नाम **जगन्नाथ** था। इन्होंने गुरुवृत्तवर्णनात्मक भास्कर-विलासकाव्य की रचना की थी। ये भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम **बालकृष्ण** और माता का नाम **लक्ष्मी** था। ऊपर लिखे हृदयामृत के रचनाकाल से निश्चय होता है कि ये १८वीं वि० शती के मध्य में आविर्भूत

१. इनके ग्रन्थों के विषय में द्रष्टव्य: Catalogus Catalogorum, Vol. I, P. 411; Vol. II, P. 94, 215, Vol. III, P. 89 तथा निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित ललितासहस्रनामसौभाग्यभास्करसंहिता की प्रस्तावना के अन्तर्गत भास्करविलास।

हुए थे। इससे इनके गुरु भास्कर राय का आविर्भाव-समय १८वीं वि० शती के प्रथम पाद या द्वितीय पादका आरंभ होगा, ऐसा अनुमान होता है। भास्कर राय की शिष्य-परम्परा में तीसरी पीढ़ी में, अर्थात् भास्कर राय के शिष्य के प्रशिष्य **रामेश्वर** ने **परशुरामकल्पसूत्र** की वृत्ति का निर्माण १७५३ शकाब्द में, अर्थात् १८३१ ई० में किया था।

उपसंहार

काशी की सारस्वत साधना के सम्बन्ध में ऊपर के पृष्ठों में किञ्चित् अंश लेकर कुछ आलोचना की गई है। इस निबन्ध में कालगत नियन्त्रण तो है ही; क्योंकि यह केवल १३वीं शती से १८वीं शती तक ही सीमित है। परन्तु, इसमें दूसरा नियन्त्रण भाषागत भी है; क्योंकि यह विवरण केवल संस्कृत में लिखनेवालों से ही सम्बन्ध रखता है। प्राकृत भाषा तथा हिन्दी प्रभृति प्रादेशिक भाषाओं में इस काल में जिस साहित्य की रचना हुई थी, उसकी इसमें आलोचना नहीं की गई। हिन्दी प्रभृति भाषाओं में भी इस समय यहाँ विपुल साहित्य की रचना हुई थी, जिसके अन्तर्गत सन्त-साहित्य तो है ही, विभिन्न विषयों पर लौकिक साहित्य का भी कम सर्जन नहीं हुआ था। संस्कृत-वाङ्मय के विषय में भी जो विवरण ऊपर दिया गया है, उसे भी एक प्रकार से दिक्प्रदर्शन-मात्र ही समझना चाहिए। अनुसन्धान अधिक कर सकने पर इस सम्बन्ध में सामग्री और भी अधिक मिल जायगी, इसमें सन्देह नहीं। आशा है, भावी गवेषक या अनुसन्धान-कारी सज्जन इस अभाव की पूर्त्ति करते हुए प्रकृत आलोचना का भी यथा-प्रयोजन संशोधन आदि कर लेंगे और इस मार्ग में आगे बढ़ेंगे। भविष्य में यदि किसी समय काशी के पूर्ण सांस्कृतिक इतिहास के संकलन के विषय में प्रयत्न किया जायगा, तो उसमें यह भी उपयोगी ठहरेगा।

जहाँतक अनुसन्धान किया गया है, उससे प्रतीत होता है कि इन छह सौ वर्षों में काशी में जिस विशाल साहित्य का निर्माण हुआ था, उसका संस्कृत-वाङ्मय के प्रायः सभी विभागों से सम्बन्ध है। उदाहरणस्वरूप वेद, धर्मशास्त्र, व्याकरण, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, पुराण, इतिहास, वैष्णवमत, ज्यौतिष (गणित और फलित) तथा अलङ्कार, काव्य, छन्द, कोश और विभिन्न ग्रन्थों की टीकाएँ इसके अन्तर्गत हैं। इससे सिद्ध होता है कि मध्ययुग में यवनों का अधिकार रहने पर भी काशी सचमुच सभी भारतीय विद्यापीठों में प्रधान विद्यापीठ के रूप में परिगणित होती थी। यहाँ परा और अपरा उभय प्रकार की विद्याओं का अनुशीलन होता था। यद्यपि मध्ययुग में यह मीमांसा, कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र तथा [illegible] की आलोचना का ही मुख्य केन्द्र था, तथापि अन्यान्य शास्त्र तथा कलाओं [illegible] उपेक्षा नहीं की जाती थी।

जिन काशी-निवासी विद्वानों ने संस्कृत-साहित्य की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए अध्यापन तथा ग्रन्थ-रचना द्वारा निरन्तर प्रयत्न किया था, वे सब मूलतः काशी

के नहीं थे। उनमें से अधिकांश भारत के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए परिवारों के अन्तर्गत थे। उस समय विदेशी शासकों से उत्पीड़ित होकर बहुतेरे पण्डित अकेले या परिवार के साथ काशी में निवास करने के लिए आये थे। वे आये तो थे अस्थायी रूप से रहने के लिए, परन्तु कुछ दिन काशी में रहते-रहते क्रमशः यहीं स्थायी रूप से बस गये। कतिपय विद्वान् धार्मिक दृष्टि से अन्तिम समय में देहत्याग करने की अभिलाषा से यहाँ आये थे, फिर उनके बाद उनके परिवार के लोग आकर काशी में बस गये। जिन प्रदेशों से ये पण्डित काशी आये थे, उनमें विशेष रूपसे उल्लेख्य ये हैं—वंगदेश, मिथिला, महाराष्ट्र, तैलङ्ग, आन्ध्रदेश, कर्णाटक, हिमाचल के अन्तर्गत कूर्माचल, गुर्जर और सौराष्ट्र। उत्तरप्रदेश के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न स्थानों से भी लोग आये थे, जैसे कान्यकुब्ज, अहिच्छत्र आदि।

इन पण्डितों में कुछ विशिष्ट विद्वान् यवन-सम्राटों द्वारा सम्मानित होते थे। इस प्रसङ्ग में नारायणभट्ट, विद्यानिवास भट्टाचार्य, सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य, श्रीकृष्णदैवज्ञ, वाणीरसालराय, पण्डितराज जगन्नाथ, रुद्र न्यायवाचस्पति प्रभृति विद्वानों के नाम उल्लेख्य हैं। कुछ तो मुगल-सम्राट् द्वारा उपाधियों से भी विभूषित किये गये थे। इन उपाधियों में पण्डितराज, सर्वविद्यानिधान, जगद्गुरु, वाणीरसाल इत्यादि प्रधान हैं।

कतिपय महापुरुषों ने भी इस समय काशी में पदार्पण किया था। श्रीचैतन्य महाप्रभु का नाम तो प्रसिद्ध ही है। उन्होंने सनातनगोस्वामी को जो उपदेश दिया था, उसका वितरण-स्थान भी काशी ही था। सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव एवं एकनाथ भी काशी आये थे। मेहेरपीठ के सर्वविद्यावंश के मूलपुरुष **सर्वोल्लास** नामक तन्त्रग्रन्थ के रचयिता सर्वानन्दठाकुर भी यहाँ आये और अन्तिम समय में निवास किया।[१] जैनसम्प्रदाय के यशोविजय की स्मृति काशी के साथ सदा मिली हुई है। रामचरितमानस के रचयिता भक्तप्रवर तुलसीदासजी के साथ काशी का जो घनिष्ठ सम्बन्ध था, वह सर्वविदित है। अघोरपन्थी बाबा कीनाराम भी काशी से ही संश्लिष्ट थे। प्रसिद्ध संन्यासियों में नृसिंहाश्रम, मधुसूदनसरस्वती, प्रकाशानन्द प्रभृति की भी कर्मस्थली काशी ही रही।

परिषद् के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. भारतीय संस्कृति और साधना (दो खण्डों में)—
म. म. डॉ. श्रीगोपीनाथ कविराज

2. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि—
म. म. डॉ. श्रीगोपीनाथ कविराज

3. बौद्धधर्म-दर्शन— आचार्य श्रीनरेन्द्रदेव

4. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति—
म. म. पं. श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

5. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा— पं. श्रीबलदेव उपाध्याय

6. यूरोपीय दर्शन— म. म. पं. श्रीरामावतार शर्मा

7. शैवमत— डॉ. श्रीयदुवंशी

8. भारतीय प्रतीक-विद्या— डॉ. श्रीजनार्दन मिश्र

9. षड्दर्शन-रहस्य— पं. श्रीरंगनाथ पाठक

10. विश्वधर्म-दर्शन— श्रीसाँवलियाविहारीलाल वर्मा

11. रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना—
डॉ. श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना—4